

संस्कृत



• संमय राघव •

लोई का ताना

डा० रंगेय राघव

८ भूमिका

प्रस्तुत ग्रंथ में कबीर की भोंकी है ।

यैसे कबीर के जीवन सम्बन्धी तथ्य अधिक नहीं मिलते । मैं उनके साहित्य को पढ़ कर जिन निष्कर्षों पर पहुँचा हूँ उन्हीं को मैंने उनके जीवन का आधार बनाया है । कबीर पहले निम्नजातीय हिंदू बन कर रहना चाहते थे पर रामानन्द की दीक्षा के बाद वे आत पोंत की ओर से संदिग्ध हो गये । वे पहले अवतारवाद मानते थे । फिर वे निर्गुण की ओर झुके । फिर योगियों के रहस्यवाद और षट् चक्र साधना आदि की ओर । बाद में वे सहज साधना में चमत्कारवाद से आगे बढ़ गये । अन्त में तो वे एक नई भूमि पर पहुँच गये जिसका वर्णन यहाँ मैंने किया है । कबीर को लोगों ने शलत समझा है । कबीर में सूफीमत, वेदांत, रहस्यवाद, नारीनिंदा, तथा अनेक बातें हैं जैसे संसार की असारता पर ओर, मायावाद आदि का वर्णन, पर यह अनेक विकास की मंत्रिलें हैं । वे धीरे धीरे आगे बढ़ गये हैं । वे कितने बढ़ गये थे यह समझना तब और भी अधिक आश्चर्य देता है जब हम सोचते हैं वे आज से सैकड़ों बरस पहले थे । कबीर के चेलों ने ब्राह्मणों की नकल की । कबीर के विद्रोह और सत्य को दबा दिया गया । कबीर इतिहास में एक उलझन बन गया । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ब्राह्मणवादी आलोचक थे । उन्होंने कबीर को नीरस निर्गुणिया कह दिया । वे कह गये हैं कि कबीर ने कोई राह नहीं दिखाई । कबीर ज्ञान के रहस्य में डूबा था । साधारण जनता कबीर को समझ नहीं सकी ।

यह सब ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण है अतः त्थान्य है । अवैज्ञानिक है ।

कबीर निगुण के परे था। कबीर ने जो राह दिखाई वह मानवता के कल्याण की ओर ले जाने वाली थी। वह भारतीय संस्कृति के नाम पर भेद भाव वाले ब्राह्मणवाद को नहीं मानते थे। वे इस्लाम का विरोध करके भी उससे घृणा नहीं करते थे, और उसे मुक्ति का पथ भी नहीं समझते थे। कबीर ने जनता का दलित जीवन देखा था, तुलसीदास की भाँति नहीं, एक जुलाहे की भाँति। वे सगुण ईश्वर को मानकर ब्राह्मणवाद के नियमों में बंध नहीं सके। पर उनका रहस्य भी ऐसा न था, कि वे संसार को छोड़ देते। घर में पत्नी थी, पुत्र था। पर पत्नी और पुत्र के ही लिये झूठे रह कर दूसरों का गला काटना वे माया कहते थे। कबीर ने कहा कि इंसान को किसी लुढ़ी की जरूरत नहीं, वह ईश्वर के लिये भगड़े, यह व्यर्थ की बात है। ईश्वर रहस्य इसीलिये है कि मनुष्य अपनी सीमित बुद्धि से उसे जान नहीं सकता, जो जानकार बनते थे उनको उन्होंने भूँठा कहा। कबीर ने ही कहा था कि प्यारे आत्मान की ओर ताकना छोड़ दे। मन की कल्पना और भरमना छोड़ दे।

यह क्या शून्यवादी के शब्द हैं ?

कबीर ने दूसरों के बल पर खानेवाले साधुओं का घोर विरोध किया था। वे तो महनत का खाना चाहते थे। साधारण जनता ने कबीर को समझा था। उसी ने कबीर को मुल्ला, पंडित, जोगी, आदि के पुरोहित वर्ग और सत्ताधारियों से बचाया था। पर बाद में कबीर पंथियों ने कबीर को मिटा दिया। परवर्त्तकाल में कबीर को चमत्कारों से ढंक दिया गया।

कबीर ने हिंदू मुसलमान दोनों को नितान्त निम्नजाति के आदमी की श्रेणी से देखा था। पर चेले पढ़े लिखे थे। उस समय मुसलमान शासकों की शक्ति भी बढ़ गई थी। सारी भारतीय जातियों का संगठन हो रहा था। निम्नजातीय जनता के रूप में कबीर के अनुयायी भी दलित थे। शासन मुस्लिम था। अतः इस्लाम पर अत्याचारों के नाम चढ़ते थे। उस समय कबीर पंथ हिंदू मत ही बन गया था।

कबीर ने तो भारत के साँस्कृतिक जन जागरण की नींव डाली है। उसके युग के बंधन थे, और उनकी उस पर छाप है। वह धीरे धीरे विकास करके कितना आगे आ गया था !

माया में उसने कान्ति की । दिल्खुल जन माया बोली । तुलसी की मोति वक्त वेवक्त संस्कृत की बैसाखियों नहीं लगाईं । तुलसी के देवता आखिर संस्कृत बोलते थे । कबीर ने जनता के उपमान लिए और जीवन के अच्छे आचरण पर—सामाजिक आचरण पर जोर दिया । जहां तुलसीदास सारे अनाचार की जड़ कलि को मानते थे, कबीरदास कलि का नाम भी नहीं लेते । वे तो मोह-लोभ-दम और घन को ही इस माया और अनाचार का मूल मानत हैं ।

कबीर का मुख्य संदेश प्रेम का है ।

अब प्रस्तुत पुस्तक के बारे में कुछ और बातें साफ करदूँ ।

कबीर पदे लिखे न थे । कविता लिखते नहीं थे । वे तो फौरन सुनाने वालों में थे । लोग लिखा करें, उन्हें इससे बहस नहीं थी । वे तो कह देते थे । इसी से मैंने उनकी कविताएँ उनके मुँह से परिस्थितियों के बीच में चुनवाई हैं ।

दूसरी बात है कमाल के द्वारा क्या कहलवाना ।

कमाल कबीर का पुत्र था । कमाल के बारे में प्रसिद्ध है—

बूढ़ा वंस कबीर का,

जब उपजा पूत कमाल ।

परन्तु यह विद्वानों द्वारा कबीर की पंक्ति नहीं मानी गई । कमाल के बारे में किंवदंती है कि कबीर के बाद जब उसने पिता के नाम पर पंथ चालू करने से इंकार कर दिया तो कबीर के चेलों ने उसे ऐसा नाम दे दिया । कबीर की पत्नी लोई थी । कबीर की कविताओं में उसका नाम है ।

संघों के अभाव में कबीर के जीवन का पूरा चित्र देने में कमाल ने सहायता दी है । पहले कमाल उपसंहार में अपनी परिस्थिति बताता है । तब कबीर मर चुका है और पंथ बन गया है । 'उपसंहार से पहले' में कबीर की मृत्यु के बाद गुरुओं की कविताओं को सुना कर आपस में लड़ने वाले चेलों का वर्णन है । फिर 'आरम्भ' तक कबीर के विशेष रूप हैं । मरझोवा वाला अप्याय कबीर की महानता, नया पंथ और उसके चितन को स्पष्ट करने को है । अन्तिम अप्याय में कबीर के जीवन के मोड़ हैं ।

कमाल ही बोलता है। मैं नहीं बोलता। अपने युग के बंधनों में रहकर जो कमाल कह सकता है वह कहता है, बाकी मैं भूमिका में कहे दे रहा हूँ। कबीर निरसंदेह तत्कालीन जीवन में क्रान्ति का बीज था। दुर्भाग्य से बाद में फिर वह वर्गसंघर्षों जातिसंघर्षों में दब गया तब वर्गसंघर्ष का मतलब वर्णसंघर्ष ही था।

मेरी अगली जीवनी 'रत्ना की बात' में तुलसीदास का वर्णन होगा, तब कबीर और तुलसी का मेद स्पष्ट नहीं हो जायेगा वरन् भारतीय इतिहास के इस अध्याय पर नया विवेचन भी स्पष्ट ही होगा।

उपसंहार

‘मैं कमाल हूँ। मेरे बाप का नाम कबीर था और माँ का नाम लोदी था।’

‘तुम क्या करते हो ?’

‘काशी में जुलाहे का काम करता हूँ।’

‘फिर यहाँ क्यों आये हो ? यह तो हरद्वार है !’

‘जानता हूँ, लेकिन क्या करूँ ? भटकता फिरता हूँ।’

‘क्यों ऐसी क्या मुसीबत आगई तुमको ?’

‘मैं तुम्हें कैसे बताऊँ !’

‘शादी हो गई ?’

‘नहीं।’

‘तो बताने को बाकी क्या रह गया ! घर में प्रबंध नहीं है तो अपने आप साधु बन जाओगे। लेकिन कबीर का नाम तो हम लोगों ने सुना है। वह तो आदमी साधू या न ?’

‘हाँ संत थे, और कवि थे।’

‘अच्छा ! कविता भी करता था ?’

‘अरे क्या तुम काशी कभी नहीं गए ?’

‘मैं तो और भी ऊपर हृषीकेश में रहता हूँ ।’

‘तुमने उसका नाम नहीं सुना ?’

‘सुना तो सही । पर उधर तो हम पण्डों में उसकी तारीफ नहीं है । वह तो मठों और मंदिरों का शत्रु था । हमने तो यही सुना था कि आदमी बड़ा अस्वद और फकड़ था ।’

कमाल हँसा ।

पण्डा चौंका । पूछा : ‘क्यों हँसते हो ?’

‘मैं यही तो सोचता था ।’

‘क्या ?’

‘तुम कहते हो वह गद्दीदारों का दुश्मन था । ठीक यही न ?’

‘हाँ हाँ ।’

‘और जानते हो, काशी में उनके चेलों ने क्या किया है ?’

‘नहीं ।’

‘उन्होंने कबीर के नाम पर ही पंथ चला दिया है, गद्दी लगा बैठे हैं ।’

कमाल फिर हँसा, उसकी आवाज में व्यंग और विक्षोभ था । पण्डा कुछ तालजुब में आगया ।

कमाल ने फिर कहा : ‘जानते हो उन्होंने मुझसे क्या कहा ?’

‘क्या कहा ?’

‘कहने लगे कबीर का घेठा कमाल ही लायक आदमी है । वही कबीर साहब की जगह अब उनके मंत्र का प्रचार कर सकता है ।’

‘कैसा मंत्र ?’ पण्डा ने पूछा, ‘मंत्र का अधिकार तो ब्राह्मण को है !’

‘तो तुम्हारी मंत्र परम्परा तुम्हें ही मुबारक हो पण्डित ! मेरा बाप तो कभी इन चीजों से प्रभावित नहीं हुआ और फिर मैं कैसे होता !’

‘क्यों नहीं, आखिर तो बाप का ही घेठा ठहरा !’

मैंने कहा—‘नहीं बाबा ! मुझे गद्दी नहीं चाहिये । मेरा बाप गद्दी धारियों के ही खिलाफ तो जन्म जिन्दगी लड़ता रहा ।’

‘अरे तुम जुलाहे हो ! तुम्हारी बयणजीवी जातियाँ पंजाब से लेकर बंगाल तक धीरे धीरे मुसलमान हो गई हैं ।’

‘क्यों न हों ? परिदृष्ट ! क्या कोई बुरा काम करते हैं जुलाहे ! तुम ने उन्हें नीचा समझा तो वे क्या करते !’

‘अरे तुम शाक्त, वाममार्गी, देवीपूजक ! ब्राह्मणों के पुराने विरोधी !! मुसलमान न होओगे तो क्या करोगे ?’

‘मैं एक बात पूछूँ परिदृष्ट !’

‘पूछो !’

‘बताओ ! हिंदुओं में जो नीचे हैं, पर मुसलमान नहीं हुए, वे कहाँ रहे !’

‘वे शूद्र हैं !’

‘तो जो मुसलमान हो गये वे ?’

‘वे धर्म नाश करके म्लेच्छों के, यवनों के दास बन गये, उन्होंने तो अपने यह लोक और वह लोक दोनों बिगाड़ लिये !’

कमाल ने कहा : ‘यही मेरे पिता कहते थे । वे कहते थे कि भाइयो ! तुम नीचे माने जाते हो । हिंदू अपने देश के घासी हैं । वे तुम्हें नीच मानते हैं । मुसलमान शासक परदेशी हैं । अगर वे तुम्हें मुसलमान बनाते हैं और हम मुसलमान बन कर अपने को आजाद समझने लगते हो, तो क्या उससे समस्या का हल हो जाता है ?’

‘क्या मतलब ?’

‘अरे यह तो साफ है । मान लो मैं जो जुलाहा हूँ हिंदुओं में नीच माना जाता हूँ । अगर मैं मुसलमान हो जाता हूँ तो हिंदू मुझे बात बात में दबा नहीं सकते, लेकिन फिर भी आदमी आदमी के बीच दरार बढ़ती चली जाती है ।’

‘कैसी दरार ! यह दरार आब की है ! सनातन काल से भगवान ने यह दरार बना रखी है रे जुलाहे !’

‘भगवान ने कि आदमी ने ?’

‘आदमी ! आदमी क्या होता है ? आदमी तो निमित्त है, जो होता है वह अणल में उसी की इच्छा है ।’

‘लेकिन मेरे पिता कहते थे.....’

‘अरे तेरे पिता कहते थे !! उसने शूद्रों और जुलाहे कोलियों की भीड़ दफट्टी करली, वना जुलाहे का क्या कहना, क्या न कहना । दिश । क्या समय

आ गया है। प्रभु ! कैसा कलिका प्रकोप है ! अभी तक वे नाथ जोगी थे, उनकी मुसीबत थी, अब यह एक नयी परेशानी खड़ी हो गई। क्यों रे ! तेरा बाप सहज यानी था ?

‘नहीं।’

‘तो ?’

‘वह आदमी था।’

‘यानी बाकी सब जानवर हैं ?’

‘यह तो मैंने नहीं कहा।’

‘तो फिर तेरा मतलब क्या था ?’

‘मैं तो सिर्फ यही समझा हूँ कि बाकी सब लोग जात पाँत, धर्म भेद और संप्रदायों में बँटे हुए हैं। किसी पुरानी विरासत से बँधे हुए हैं। मेरा बाप कहता था कि इन सब बंधनों से परे भी एक सत्य है।’

‘वह क्या है ?’

‘मनुष्यत्व !’

‘तो तेरे बाप का अर्थ था कि यह पवित्र भारत भूमि, यह देव भाषा, यह भव्य मंदिर, यह प्राचीन मर्यादा, सबको छोड़कर मुसलमान बन जाया जाये ?’

‘नहीं।’

‘तो ?’

‘उनका कहना था कि जिस तरह हिंदू अपने भेद भावों में फँसे हुए हैं, उसी तरह मुसलमान भी अपने दूसरे ढंग के घमंड में चूर हो रहे हैं। इन दोनों को असली मर्म नहीं मालूम।’

‘वह तो सिर्फ तेरे बाप को मालूम था ! उसका मतलब यह कि मुसलमान आते हैं, आ जाने दो। ठीक ही तो है। जुलाहे का क्या जायेगा ? जुलाहा कभी राजा तो बनेगा नहीं। अरे जो कुलीन हैं, जो अधिकारी हैं, उनकी क्या परिस्थिति होगी ?’

‘कमाल मुस्कराया।’

‘क्यों हँसता है रे जुलाहे ?’

‘परिडत ! ठीक बात है। मेरा बाप यही कहता था।’

‘क्या कहता था ।’

‘यही कि जिनकी जात नीच है उनके लिये यह ब्राह्मण और यह मुस्लाम दोनों समान हैं । ये हिंदू समाज के जात पाँव के मेद को देख कर फूट डाल कर अपने फायदे के लिये लोगों को मुसलमान बना कर उसका इस्तेमाल करते हैं, और इस तरह संस्कृति और धर्म की रक्षा के नाम पर, नीचों को ऊपर उठाने के अहंकार के नाम पर, हिंसा पलती है, धुंसा बढ़ती है । वह मनुष्य को फिर जातियों में बाँटती है और छुआछूत बढ़ती है ।’

‘अरे जा जा जुलाहे के निखटू पूत ! तेरी ये मजाल कि हम ब्राह्मणों को तू सबक देने लगा ! प्रभु ! इस फल में क्या क्या नहीं होगा !’

‘महाराज ! व्याकुल न हों, मैं स्वयं चला जाता हूँ ।’

‘अरे अब तू जाकर भी क्या करेगा जुलाहे ! तेरा बाप तो सत्यानास के बीज बो गया ! क्यों रे ! मैं पूछता हूँ काशी में क्या धरम नहीं रहा ! इतने इतने दिग्गज विद्वान बहाँ रहते हैं । उन्होंने नहीं रोका उसे !’

‘उसे किसने नहीं रोका ब्राह्मण देवता ! उसे मुस्लान लोदी ने रोका, मुस्लामों ने रोका, महंतों, मठाधीशों और परिद्वतों ने रोका, उसे पेशेवर साधुओं और संन्यासियों ने रोका, उसे नाथ जोगियों ने घोल कर समाप्त कर देने की चेष्टा की, उसे सूफियों ने अपने संप्रदाय में मिलाकर मिटा देने की कोशिश की, लेकिन वह !! वह नहीं मिटा । न मुस्लान की तलवार उसे काट सकी, न मुस्लामों के फतवे उसका सिर झुका सके । महंतों, मठाधीशों और परिद्वतों की जीम उसके सामने लड़खड़ा गई । उसने मुफ्तखोर साधुओं को बताया कि जिंदा रहते हो तो हाथ पैरों से कमा कर लाओ, उसने नाथ जोगियों से कहा कि नहीं स्त्री पाप नहीं है, वह धृषित नहीं हैं, उसने सूफियों के उस छद्मदेश को प्रकट कर दिया जिसकी आद में वे इस्लाम का प्रचार किया करते थे । वह मेरा बाप कबीर था ।’

‘अरे तेरा न था तो क्या मेरा था । तू तो ऐसा खुश होरहा है जैसे जैन अपने तोर्यङ्कर की याद कर के प्रगन हो जाते हैं ।’

‘यही तो मुझे खाले डालता है ।

‘क्या मला !’

‘कबीर के चेले, कबीर की हत्या कर रहे हैं ।’

‘सो क्यों ?’

‘वे कबीर को अवतार बनाने की ही कोशिश कर रहे हैं और भूँटे चमत्कारों को दर्ज कर करके वे कबीर को गिराने की कोशिश कर रहे हैं । वे बड़प्पन की एक ही कल्पना करते हैं । जो आज बड़े कहलाते हैं उनकी नकल कर के उन जैसा हो जाना ही उनकी दृष्टि में महानता है, जब कि ये बड़े कहलाने वाले, उनके बड़प्पन के ढंग, यह सब बहुत छोटे हैं...’ सब बेकार हैं.....’

‘अरे चल चल...’ सिर पर ही चढ़ा जाता है । दूर होजा मेरी आँखों के सामने से । हैंसता है ? कमबख्त ! दूर होजा ।’

‘हँसता हूँ तुम्हारा छोटापन देखकर परिइत ! यह सब कुछ बदल जायेगा, सब कुछ बदल जायेगा । यह सब छोटे सत्य हैं । अविनाशी अव्यक्त पुरुष का सत्य इन सब से परे है । उसका तत्त्व समझना मनष्य के लिये कठिन है, क्योंकि वह अपनी ही रुढ़ियों में बंधा हुआ है । उसको ही माया, और अहंकार ने बाँध रखा है । मैं स्वयं चला जाता हूँ । जहाँ जहाँ भी मैं जाऊँगा यही कहता फिरूँगा । मैं चला जाऊँगा, पर मेरा एक गीत सुनलो ब्राह्मण देवता ।’

‘नहीं मुझे नहीं सुनना है कुछ !’

‘अच्छा मैं जाता हूँ, गाता जाऊँगा, जो सुन सको वह यहीं बैठे बैठे सुन लेना ।’

कमाल बाहर आगया और गाने लगा—

सुनता नहीं धुन की खबर

अनहद बाजा वाजता ।

रस मंद मंदिर गाजता

बाहर सुने तो क्या हुआ ॥

गाँजा अफीमो पोस्त

भाँग औ’ शराबें पीवता,

इक प्रेमरस चाखा नहीं

अमली हुआ तो क्या हुआ ॥

कासी गया श्री' द्वारका
 तीरथ सकल भरमत फिर
 गाँठी न खोली कपट की
 तीरथ गया तो क्या हुआ ॥
 पोथी किताबें वाँचता
 श्रीरों को नित समभावता
 त्रिकुटी महल खोजे नहीं
 बफ बक मरा तो क्या हुआ ।
 काजी किताबें खोजता
 करता नसीहत और को
 महरमकी नहीं उस हाल से
 काजी हुआ तो क्या हुआ ॥
 सतरंज चौपड़ गंजिफा
 इक नदं~~X~~ है बदरंग की
 बाजी न लाई प्रेम की
 खेला जुआ तो क्या हुआ ॥
 जोगी दिगंबर से बड़ा
 कपड़ा रंगे रंग लाल से
 बाकिफ नहीं उस रंग से
 कपड़ा रंगे से क्या हुआ ॥
 मंदिर भरोखे रावटी
 गुल चमन में रहते सदा
 कहते कबीरा हैं सही
 घट घट में साहब रम रहा ॥
 सुनता नहीं! धुन की खबर
 अनहद वाज वाजता ॥

संगीत दूर होता चला गया ।

● परिचित X निराकार ।

उपसंहार से पहले

बलूचिस्तान हिंगलाज में देवी मंदिर के बाहर दो आदमी बातें कर रहे थे।

‘तुम कहाँ जाओगे ?’

‘मैं बड़ी ज्वालामुखी तक यात्रा करने जाऊंगा।’

‘वह तो ईरान के भी पार है न ?’

‘हाँ कोहकाफ के पास है।’

‘कोहकाफ ! वहाँ की तो परियाँ प्रसिद्ध हैं ?’

‘मैं वाममार्गी नहीं हूँ। मुझे परियों से क्या काम ?’

‘स्त्री से काम सदा ही पड़ना चाहिये,’ पहले वाले ने कहा और कहते हुए मुस्कराया।

इसी समय घोड़े पर सवार एक आदमी आकर वहाँ उतरा। उसने मुँह पर साफे का छोर ऐसे बाँध रखा था कि ढाटा सा लगता था।

‘अरे कौन है भाई ?’

‘मुझे नहीं पहचाना ?’ कह कर उसने ढाटा खोल दिया।

‘अरे !’ पहला वाला आदमी हर्ष से उठ सड़ा हुआ । ‘जोगी कमल !
तुम कब आये !’

‘आया हूँ यह तो देख ही रहे हो । पर तुम्हारी यह धूल बला की मुसी-
बत हो गई !’

‘आओ आओ ! काशी होके आया है तो आदमी ही न रहा-!’ पहले
वाले ने कहा ।

‘उष्मकनाथ !’ आगन्तुक ने बैठते हुए कहा—‘तुम नहीं समझोगे-। मैं
जो देखकर आया हूँ यह तुम्हें आखिर मुनाक़ तो कैसे !’

‘अरे मुनाते रहना, पहले गाँवा तो पियो । इधर तो मैंने ऐसी आदत
हाल ली है कि हाथ भर कच्ची मसल उठा देता ॥’

यह अपने उस्तरे से मुँहे सिर पर हाथ फेरकर मुस्कराया और उसने उठने
की मुद्रा में देखा ।

जोगी कमल ने गले में पड़ी मालाओं के गुरियों को उंगलियों से झुल-
झापा और ठोड़ी पर लटकती दाढ़ी को खुजाकर धीरे से कहा : ‘मैं गाँवा
नहीं जाता ।’

उष्मकनाथ चौंक उठा । कहा : ‘क्यों ! क्या तू अब वैष्णव होगया !’

‘नहीं !’

‘तो !’

‘उष्मकनाथ !’ जिसे हम सब कुछ समझते हैं, यह तो कुछ भी नहीं है ।’

उष्मकनाथ नहीं समझा । कीदकाफ़ जाने वाले यात्री ने कहा : ‘मेरा
नाम हरनाथ है । मैं जात का हाड़ीमारंग हूँ । बंगाल का बासी हूँ । तुम क्या
कहते हो !’

‘तुम्हें यहाँ आये कितने दिन हुए !’ जोगी कमल ने पूछा ।

‘यहाँ तो मैं सात दिन पहले आया था । पर बंगाल छोड़े मुझे सात
बरस हो गये !’

‘फिर कारी से कब आये !’

‘समझ लो चार पाँच बरस बीत गये । काशी से मथुरा गया था । यहाँ
बादशाह सिकंदर लोदी की पचीस एक कोस पर लड़ाई होरही थी । बदलगढ़

के चँदयार ठाकुरों से घमासान हो रही थी। मैं फिर जालन्धर चला गया। पठानकोट होता हुआ यहाँ आ गया हूँ।

‘तभी तुम नहीं जानते।’

‘क्यों, गोपीचन्द के मठ की तरफ इधर से मैं सिंध जा सकता हूँ न?’

‘तुम तो कोहकाफ़ जा रहे थे?’ उज्जकनाथ ने कहा।

‘अरे तो घूम कर चला जाऊँगा।’ हरनाथ ने कहा। ‘तुम कहो, तुम काशी में क्या देख आये हो?’

जोगी कमलू कुछ देर चुप रहा। फिर कहा : ‘सतगुरु कबीर साहेब का स्वर्गवास हो गया।’

‘कीन ? मैंने भी यह नाम सुना तो है। मुझे चित्तौड़ में कुछ जोगियों ने उसके बारे में बताया था।’

‘उसके उसके क्या करते हो जी। तुम्हें इज्जत से बोलना नहीं आता।’

‘हाँ, हाँ, अपनी बात तो यही है भाई। अभी कुछ दिनों पहले एक आई पंथी मैरों का चोला चढ़ाये हाथ में अग्यारी लिये मिला था, वह कहने लगा कि गुरु दत्तात्रेय और गुरु गोरखनाथ के बीच में आई महाराज का श्रौतार हुआ। कहने लगा वह बढ़ा पहुँचा हुआ था। तुम भी उसी की सी बातें करते हो?’

‘नहीं, नहीं, मैं वह सब नहीं कहता। मैं तो सत् गुरु कबीर साहेब की बात कहता था।’

‘श्रलल निरंजन!’ हरनाथ ने कहा—‘आदेश ! आदेश !’

उज्जकनाथ ने चिलम में गाँजा भरते हुए कहा : ‘जय गुरु गोरखनाथ ! अरे कमलू तूने बताया नहीं, कि कबीर साहेब के मरने की ऐसी कीन सी बात है आखिर ! देख--

इक लाल पटा एक सेत पटा

इक तिलक जनेऊ लमक जटा

जब नहीं ऊलटी प्राण घटा
तब छोड़ जाइगे सटा पटा ।

धोल ! मुना !

‘पाद पाद !’ हरनाथ ने कहा—‘चरपट नाथ सो चरपटनाथ ही थे । पर
गुरु गोरखनाथ कह गये हैं—

भावे संगें जाइ अकेला
तायें गोरप राम रमेला ।

काया हंस संग हूँ भावा
जाता जोगी किनहूँ न पावा ॥

जीवत जगमें मूवां मसांलें
प्राण पुरिस कत कीया पर्याण !

जामण मरणां बहुरि बिगोगी
तायें गोरप भैला जोगी ॥

कमलू जोगी हुए समय मग्न सा होकर उठा और नाच नाच कर गाने
लगा—

सुगवा पिंजरवा छोरि भागा
इस पिंजरे में दस दरवाजा ।

दस दरवाजे किवरवा लाग़ा
अखियन सेती नीर बहन लाम्यो ॥

अब कस नाहि तू बोलत अभाया
कहत कबीर सुनो भई साथो ।

उड़िगो हंस दूटि गयो तागा
सुगवा पिंजरवा छोरि भागा ॥

हरनाथ और उन्मत्तनाथ आश्चर्य से देखने लगे । हरनाथ ने कहा :
‘जोगी !’

परन्तु कमलू मस्त था । उसने कहा : ‘जोगी ! जानते हो ! सद्गुरु ने
घरती को पाप से उबार लिया । वे बड़े पहुँचे हुए थे । उनका सा तो कोई
हुआ ही नहीं !’

‘क्या कहते हो ?’ हरनाथ ने काटा—‘गुरु गोरखनाथ श्रमर हैं । वे मुनेंगे तो अवश्य दण्ड देंगे ।’

‘देंगे तो सद्गुरु इस दीन की रक्षा करेंगे ।’ कमलू ने कहा ।

‘तुम गुरुगोरप पर संदेह करते हो ?’ उज्जकनाथ ने कहा—‘अरे मुनो—

ॐ आदेस अलख अतीतं

तदा न होती धरती न आकासं ।

तदा काले सिंभु भई हमारी उतपन्य ।

माता न लेवी दस मास भारं

पिता न करिवा आचार विचारं

जोनी न आयवा, नाभि न कटाइवा

पुस्तग पोथी ब्रह्मा न बजायवा ।

तहाँ अलेप पुर पटणि अनोपम

सिला तहाँ बैठे गोरपराई ।

तुम दमड़ी चमड़ी का संग्रह करी

गुरु का सबद लै लै दोजिब भरौ ॥

गुप्ती चक्र चलावीं हथियार

पंडित बुधि बहीत अहंकार ।

ऊभा ते सिध बैठ तै पापांण

श्री गोरख वाचा परवांण ।

अनन्त सिधां में रह रासि कही

गोदावरी कै मलै ऐसी भई ॥”

‘अहाहा,’ हरनाथ ने चिमटा बजाते हुए दाद दी ।

कमलू जोगी ने झूम कर गाया :

‘धुँधमई का मेला नाहीं,

नाहीं गुरु, नाहि चेला

सकल पसारा जेहि दिन मांही

जेहि दिन पुरुष अकेला ।

रमेया की दुलहिन सूटा वजार ।

सुरपुर छूट नागपुर सूटा
तीन लोक मचा हाहाकार ।

ब्रह्मा बूटे महादेव बूटे
नारद मुनि के परी पिछार ।

स्त्रिगी की मिगी करि डारी
पारासर कै उदर विदार ।

कनफूँका चिदकासी सूटे,
सूटे जोगेसर करत दिचार ।

हम तो बचिगे साहब दया से
सब्द छोड़ गहि उत्तरे पार ।

कहत कबीर सुनो भाई साधो
इस ठगिनी से रहो हुसिप्रार !

रमेया की दुलहिन सूटा वजार !

गाते गाते कमलू अपने को भूल गया ।

संझा गदरी हो गई थी । घोड़ा दिनदिना उठा । कमलू उठ खड़ा हुआ
और उसने घोंड़े की पीठ पर हाथ फेर कर कहा—बढ़ सचमुच गुरु था । वह
सचमुच गुरु था ।

और उसका गला रूँघ गया । उसे कबीर साहेब के अन्तिम दर्शन याद
आ रहे थे और फिर उसके होठों से इल्का सा शब्द निकला—सद्गुरु,
सद्गुरु.....

रात और उतर आई ।

हो गया

कमाल ही हूँ। मैं उस दृश्य को भूल जाना चाहता हूँ परंतु भूल नहीं
। क्या करूँ ?
पिता ने अपने सफेद केशों पर हाथ फेर कहा : 'बेटा कमाल !'
मैंने कहा : 'दादा तुम थक गये होंगे। कब तक बुनते रहोगे ? क्या तु
मुझ पर अपना भार एक दिन भी नहीं छोड़ सकते ?'
भाँपड़े में निस्तब्धता थी। पिता ने कठ्ठा भरी आँखों से देख कर कहा
था : 'बेटा ! जब तक आदमी जिये, उसे काम करना चाहिये। अपने पेट के
लिये काम करना तो जरूरी है। हाथ पाँव काम करते रहते हैं तो चलते रहते
हैं, उन्हें हराम के खाने की आदत नहीं डालनी चाहिये।'
'थोड़ा आराम करलो दादा !' मैंने फिर कहा था। उन्होंने कहा : 'बेटा
तू नहीं मानता तो यही सही।'
मैंने उन्हें खाट पर लिटा दिया था। उनका शरीर पतला दुबला था।
मूँछें सफेद थीं। पाँच दिन की बढ़ी हुई सफेद बालों वाली दाढ़ी बड़ी
अच्छी सी लग रही थी। वे तब सौ से ऊपर थे। मैं बुनता रहा। उस समय

उन्होंने कहा : कमाल ।

‘हाँ दादा ।’

‘बेटा तू डरता है ?’

‘किससे ? दादा ?’

‘भीत से ?’

मैं डर गया था । पूछा था : ‘देखा क्यों कहते हो ? मैं तो डर रहा था, उसी दिन से डर रहा था जिस दिन तुमने मरी सभा में कहा था कि अगर काशी में मरने से स्वर्ग मिलता है, तो तुम्हें वह स्वर्ग नहीं चाहिये । तुमने कहा था कि मगहर ही में मरूँगा, भले ही मर कर गदहे का जन्म लेना पड़े ।’

‘तू इस सबमें विश्वास करता है बेटा,’ उन्होंने लोटे लोटे कहा था ‘बुद्धि से सोच कर देख । तू ही बता । काशी अगर महादेव की है, और महादेव सब व्यापी है, तो मगहर क्या महादेव का नहीं है ?’

‘क्यों नहीं होगा ?’

‘फिर एक स्थान में पुण्य क्यों, दूसरे में पुण्य क्यों ?’

‘ठीक तो है दादा ! यह तो गलत है ।’

‘काशी के पहले लोग इस तरह बतार करके यहाँ आकर मरने वाली की संख्या बढ़ाते हैं और खूब पुण्य कमाते हैं, इसके अतिरिक्त इसमें कोई छल नहीं है ।’

‘जाने दो दादा ।’ मैंने कहा था—और फिर कान में लग गया था । कुछ देर बाद पिता ने कहा था : ‘कलक बेटा !’

‘हाँ दादा ।’

‘आज काम बन्द कर दे ।’

‘क्यों दादा !’

‘बेटा अब मैं जा रहा हूँ ।’

‘कहाँ ?’

‘वहाँ जहाँ सब ही रुक जाते हैं, और रुकते हैं लौट कर नहीं आते !’

क्या कहते हो दादा ! क्यों मुझे बाद में ही से निकालते हो । मेरा तो मन संसार में दुःखों में गिरा हुआ क्यों नहीं है ?

‘इस संसार में कोई समाधान होकर नहीं आता पुत्र ! सब आते हैं सब चले जाते हैं । नाम और गन्ध दोनों का नाश हो जाता है । कपटी और पत्यवर्दी दोनों ही चले जाते हैं । पुण्य और निरुण्य को पहचान करने वाले, पारी, और पुरषार्थ को भी ज्ञान नहीं होता । अग्नि पवन और पानी, यह सृष्टि, यहाँ तक कि विष्णुलोक भी प्रलय की छाया में विनष्ट हो जाता है । नाया मत्स्वरूप धारण करती है, यह छोड़ करता है, हरिहर ब्रह्मा भी जिससे नहीं छुटकर सके, उससे मनुष्य कैसे पार पा सकता है ? राम और लक्ष्मण चले गये । कृष्ण भीता को संग नहीं ले जा सके । कौरवों को जाते हुए देर नहीं लगी पुत्र । धारा नगरी को सुगोमित करने वाले भोज से भी नहीं रखा गया । पारथिव चले गये, कुन्ती जैसी रानी चली गई, सुबुद्धि का भण्डार सहदेव भी चला गया । चलती बार कोई कुल भी तो नहीं ले जा सका । मूर्ख मनुष्य ही बहुत कुछ संन्यस्त करता है । अपनी-अपनी कर के सब चले गये, किसी के हाथ कुल नहीं लगा । रावण भी अपनी कर गया, और दशरथ का वेदा राम भी अपनी करके चला गया ।’

मैं सुनता रहा । मुझे लगा इतिहास के विराट प्रकरण मेरी आँखों के सामने से जा रहे थे । मैंने देखा विकलात काल सब को लाये जा रहा था । क्यों सब कुछ नष्ट हो जाता है । फिर इस संसार में तत्त्व ही क्या है ?

मैंने कहा—‘दादा ! सब कुछ नष्ट हो रहा है । फिर यह परिवार क्या है ? यह क्या बंधन नहीं है । तुम बता सकते हो मुझे तुम्हारे बिना कितना दुख होगा ?’

रहेगा। यह सब लोग अपने अपने निजकार बड़ भिक्षुओं ने दिये हुए हैं।

मैं तो पढ़ा। मैंने कहा : 'मिठा क्या मनुष्य का इहम् दुःख नहीं है ? क्या उसे रोना नहीं आयेगा ?

पिता ने धीरे से कहा : 'पुत्र ! संसार में कौं के काय रहता पाव नहीं है, वह तो सृष्टि का शून्य है। संसार की पाटना माया नहीं है। मिट्टी को संतान और गारी से बनाया सम्बन्ध कष्ट काइया है वही मूला दुःखा है। सृष्टि का काम है सब आदा है, सब निवृत्त होता है। मनुष्य के निम्न की वैशेष्य दुःख करना मनुष्य का कष्टान ही होता है। यह कष्टान ही मनुष्य को कष्टान पेड़ना देता है।'

पिता खुश हो गये। मैंने उनके सब सब लिये और कहा : 'मैं तो संसार व्यर्थ ही है तो इसके लिये इतने दहाकार क्यों ?'

'दाहाकारों का मनुष्य ने निर्माण दिया है दुःख ?' पिता ने सोचते हुए कहा, 'मृष्टि ने मृत्यु दी है, तो कल भी दिया है। यह मैं कहकर दूसरे को घटाना ठीक नहीं है। पण्डु मृत्यु जीवन के साथ कष्टान है और मृष्टि संसार के लोग अपने कुछ धर्मिकता जीवन को अनन्य अनन्य करने हैं उनको चित्ताकर याद दिलाना पड़ता है।

पिता ने कहा : 'पुत्र ! माता पिता शून्य केवल बालक को करना वह का स्वार्थ से पालते हैं। बाधिन रूप धारण करते उसे क्षमिनी या सेना बाधनी है। पुत्र कलत्र विचारों की तरह मुँह कादे मड़े मूँते हैं। कौआ और गिद्ध दोनों ठसरी मृत्यु नादने हैं। स्वार्थ और कुत्ता उलकी गह देखते हैं। पत्नी कहती है यह मुझे मिल जाये। पवन कहता है मैं उड़ा ले जाऊँगा। अग्नि कहती है मैं इस शरीर को जलाऊँगी। श्वान कहता है इसके जल जाने पर मैं इसका उधार करूँगा। जो केवल विषयों में भूले रहते हैं उनके लिये मैं यह बात कहता हूँ। मेरा मेरा कह कर स्वार्थ में भूले हुए लोग लटपटाते हैं। मनुष्य की पवित्रा सत्ता हरि स्मरण के लिये मिली है। हरि क्या है कमाल। वह सृष्टि का अज्ञात महान रहस्य, जो मूलतः आलोक है, प्रेम है, गहन है, उलकी अनुभूति वह मनुष्य ही तो प्राप्त कर सकता है।

मैंने देखा धीरे-धीरे धुंधलका छाने लगा था। पिता गुनगुनाने लगे—

भूला लोग कहै घर मेरा
 जा घरवा में फूला डोलै
 सो घर नाहीं तेरा,
 हाथी घोड़ा बैल वहाना
 संग्रह कियो घनेरा
 वस्ती में से दियो खदेरा
 जंगल कियो वसेरा ॥
 गांठी बांधी खरच न पठ्यो
 बहुरि कियो नहीं फेरा
 वीवी बाहर हरम महल में
 बीच मियां का डेरा
 नौ मन सूत अरु भि नहिं सूझै
 जनम जनम अरु भेरा,
 कहत कवीर सुनो हो संतों
 यह पद करो निवेरा ।

मैंने सुना तो मेरी वेदना अपने आप स्थिर हो गई । वह उतरता अंधेरा ।
 पिता के चरणों पर मेरे भय का अन्त हो गया । वह मेरा पिता था । जिसने
 मुझको पाला पोसा, वहीं तो मेरे जीवन का शाश्वत अभय था । उसके ही
 सहारे से मैं अपने को पूर्ण समझता था । किंतु पिता की इस वाणी ने बताया
 कि सृष्टि के क्रम में सबका ही नियंत्रण है । जिसको मनुष्य अपने सीमित
 सामान्य साधनों से काट नहीं सकता । और मुझे पिता के वे पहले शब्द
 याद आने लगे—इस संसार में जिसे देखा दुखी ही देखा । तन धारण
 करके किसी ने भी सुख नहीं पाया । मैं उदय अस्त की बात करता हूँ, तुम
 इसे विवेक से सुन कर विवेचन करो । इस पथ पर सब ही दुखिया हैं, गृहस्थ
 या वैरागी, जोगी, जंगम, सब ही को दुख है और तापस को तो दूना दुख है ।
 मैंने दुहराया—तापस को तो दूना दुख है । तपस्वी को ? दूना ? ?
 भोंपड़े की नीरवता अब गहरी हो गई थी । पिता को जैसे अब मेरी याद
 नहीं थी । वे अपने गहरे सोच में पड़ गये थे ।

मैंने उठ कर दीपक जला दिया। उसका हल्का प्रकाश भौंपड़े की भीतों पर कांपने लगा और वह मुझे उस समय अच्छा लगा। उसमें कितनी सात्वता थी। वे लाट पर सीधे लेटे थे। उनका चांदा और दीप्त भाल दिखता था, और मैं सोच रहा था। यही है वह माथा जिसने हजारों आदिमियों को हिला दिया था। यह गरीब पैदा हुआ था। आज भी गरीब था। जीवन भर मेहनत कर के इसने कमाई की और कितना शांत, कितनी पवित्र होकर लेटा हुआ है यह? मैं सोचने लगा, हम सब आत्मा को मानते हैं। पिता भी सम्भक्त है कि यह एक बिरानी वस्तु है जो पाँच तत्त्व के इस पित्रे में आती है और अनदेखे ही चली जाती है और यह देह बिना पानी के ही सूख जाती है। राजा, रानी, अभिमानी चले जाते हैं। मुझे गीता की बात जो मैंने साधुओं की रम्यता में सुनी थी याद आने लगी—वह आत्मा न जन्म लेती है, न मरती है, वह अमर है। जैसे पुराने बत्त छोड़ कर मनुष्य नये वस्त्र धारण कर लेता है, वैसे ही एक चोला छोड़ कर वह दूसरे शरीर का चोला धारण कर लेती है। यहाँ जोग करने वाले जोगी और कथा सुनने वाले भोगी चले जाते हैं।

फिर पिता के शब्द आये। उन्होंने कहा था—यह तो पाप पुण्य की हाट लगी हुई है। परम यहाँ दृष्ट लेकर दरबानी करता है। केवल भक्ति रखने वाला ही अपनी मति को स्थिर रखने में समर्थ होने पर काल से पराजित नहीं होता।

यह सत्ता महासमुद्र में उठी हुई एक लहर के समान है जो उठती है और फिर लय हो जाती है।

और अभी मैं सोच रहा था कि मुझे एक विमोर किंतु पराभूत सी चेतना की अनुभूति मिली।

मैंने मुना वे अत्यन्त गम्भीर और सयत स्वर से गा रहे थे। मुझे आश्चर्य हुआ।

परंतु मैंने देखा वे मुत्करा रहे थे और उनकी आँखें अब दीपक की रोशनी को देख रही थीं। उस वक्त मुझे लगा जैसे दीपशिखा स्थिर होगई थी। भौंपड़े में एक नयी आभा फैल रही थी। और शब्द मेरे कानों में पड़ने लगे—

कौन ठगवा नगरिया लूटल हो
चंदन काठ कै बनत खटोलना
तापर दुलहन सूतल हो ।

मैंने अपनी चेतना में देखा और वह कल्पना मेरी सीमाओं को तोड़ने लगी । मुझे लगा मैं किसी इतने महान व्यक्ति के पास था कि मुझे आश्चर्य हुआ । और संसार ? संसार उनसे डरता था, घृणा करता था । लोग उन्हें दार्शनिक कहते थे । मैं देख रहा था कि वह आदमी, उस आदमी का हृदय, उस आदमी की चेतना, यह सब कितने अधिक कोमल थे !

वह मेरे पास भी थे, फिर भी मुझे लग रहा था कि जितना ही मैं हाथ पसारता हूँ, उतने ही वे मुझसे दूर हो जाते थे । उस क्षण मुझे लगा मैं वहाँ अपने लिये नहीं, उनके लिये हूँ । किसी का आलोक या महानता अपने आप में पूर्ण नहीं हैं । उनका बड़प्पन या अन्धकार मिटाने की शक्ति को दिखाने के लिये उनकी तुलना की एक वस्तु उनके सामने रहनी ही चाहिये । ऐसा ही मैं कमाल हूँ, जो भाग्य से कबीर जैसी महान् आत्मा के पास आगया हूँ । क्या है यह मेरी सत्ता, कुछ नहीं । बल्कि मुझे लगा कि इस अवमुन्दे नयनों वाले महाकवि के लेटे हुए शरीर के सामने मैं जो चलते फिरते होने के कारण, यों अपने को नायक समझ रहा हूँ, वह मेरी भूल ही है । नायक तो लेटा है । मैं जो कुछ हूँ उसके कारण हूँ ।

और तब आत्मा की अनुहार का लरजता स्वर मुझे सुनाई दिया :

उठो सखी मोर मांग सँवारो

दुलहा मोसे रूसल हो ।

वह रूटना कितना मधुर था । मैं तन्मय हो गया । एक विशाल जीवन अपने अन्तिम क्षण में आत्म यातना को प्रेम की सरस अनुभूति में भिगोकर संसार को दिये जा रहा था । अनंत था वह जीवन का अभिनय, कितनी मादकता थी इसमें !

और पिता का स्वर सुनाई दिया—

आए जमराज पलँग चढ़ि बैठे

नैनन आंसू टूटल हो ।

मैं चौंक उठा ! सम्राज !!

पिता ! वे जा रहे हैं !!

और मैं लड़ा-खड़ा भूल गया हूँ !

आखिर क्यों !

क्या यह ममता से विरक्ति मुझे अपने पिता के द्वारा ही विरासत में नहीं मिली है !

परन्तु क्या यह हतनी बड़ी है कि मुझे बाँधे रह सके ! ठीक है कोई शाश्वत नहीं होता। पिता भी तो सौ बरस से ऊपर हैं। क्या वे जिये ही जायेंगे !

नहीं !

तो क्या वे चले जायेंगे !

यही मेरी समझ में नहीं आ रहा था। मैं वहाँ अपने पिता को नहीं देखा रहा था, मुझे वहाँ अनेक शताब्दियों का ज्ञान दिखाई दे रहा था। मुझे युग ही साकाररूप में दिखा रहा था। मुझे लग रहा था वह मनुष्य की देह धारण करने वाला ही नहीं था, वहाँ मुझे मनुष्य की आत्मा के सच्चे दर्शन हाँ हो रहे थे।

और फिर स्वर उठा—

चारि जने मिलि खाट उठाइन

चहूँ दिसि धू धू ऊठल हो

कहत कबीर मुनो भइ साधो

जग से नाता छूटल हो।

वहीं मैं अपना संतुलन खो बैठा और खाट की पाटी पकड़कर रोने लगा। उस समय दीपक के प्रकाश में जब पिता ने मेरी ओर देखा तो मुझे लगा सचमुच वह दृढ़ता हुआ नाता फिर जुड़ गया है, अब वह नहीं टूटेगा क्योंकि स्नेह के बंधन में खिंचने की शक्ति होती है।

पिता ने कुछ नहीं कहा। वे मेरे सिर पर हाथ फेरते रहे। मचते हुए दादाकार शांत हो गये। सब कुछ केन्द्रीभूत हो गया, सब कुछ पास आगया। उस भीषण में कबीर के स्पर्श से दीपक के प्रकाश में बैठा हुआ मैं अपने माँह

ममता और स्नेह की स्तर-स्तर जमी पतों को उघड़ते हुए देखता रहा ।

आधीरात हो गई थी ।

मैंने देखा वे शांत सो गये थे । मैंने खेस उढ़ा दी । वे किसी गहरे स्वप्न में उलझे हुए से दिखाई दे रहे थे । वह न जाने किस विराट यात्रा का अंत था या किसी नवीन महान यात्रा का उपक्रम था । मैं नहीं जानता । वे जब बात करते थे तो ऐसा लगता था, जैसे वे किसी गूढ़ रहस्य को समझते हैं, जैसे समझते तो नहीं, परन्तु उसकी उन्हें अनुभूति हो चुकी है और वे उसे समझने की चेष्टा करते हैं तो शब्द निर्बल हो जाते हैं, वे जो कहना चाहते हैं, निस्संदेह वे उसे नहीं कह पाते । और मैं सोचने लगा, क्या वे फिर ऐसे ही किसी रूप के विषय में आज फिर सोच रहे थे ! अनाहत नाद !! वह नाद जो किसी प्रकार के संघर्ष से जन्म न ले ! पिता उसे बोलती देदीप्यमान शीतल ज्वाला का आलोक कहा करते थे.....

मुझे लगा इस समय खाट पर वही आलोक मुस्करा रहा था.....

सुबह जब मैं उठा तो आवाज सुनकर ।

धीरा कहार था । उसने पुकारा : कमाल भैया । कमाल !

मैं बाहर आया ।

अरे बाहर आकर तो क्या देखता हूँ, कि देखता ही रह गया । मेरे पिता के पास कुछ युवक आया करते थे । वे उनकी कविताओं को लिख लिया करते थे । कभी कभी मैं भी लिख लेता था । पिता के पास सदा ही साधूसंतों की भीड़ रहा करती थी ।

मगहर में तो वह भीड़ बढ़ गई थी । बल्कि माँ के मरने के बाद से तो हम दोनों की कमाई साधू संतों की सेवा में ही उठ जाती थी । पिता आगे आगे चलते । संग भीड़ चलती । कभी पिता गाते, भीड़ दुहराती । परन्तु मैंने जो आज देखा वह तो बात ही और थी ।

सारा मगहर निस्तब्ध इकट्ठा हो गया था ।

उस भीड़ की उदासी में मेरे पिता की ऐसी महानता छिपी थी सिहर उठा। मुझे याद आया, अंधेरी काली रात छा रही थी। आकाश धमंड करती घटाएँ छा रही थीं। सनसनाती हवा शीतल सी बह रही थी। मैं उस दिन न जाने पिता के किसी गूढ़ पद का चिंतन कर रहा था। उस सितारेचक्र में कितना अचानक वह ठंडी हवा मेरे शरीर में लगी तो मैं सिहर उठा था। उस सितारेचक्र में कितना अचानक आनंद था ! वह किसी अप्रत्यक्ष आनंद का झिलमिलान था जो आभास था जो आया था, जिसने मुझे रोम रोम को जगाया था और फिर अंतरिक्ष तक सनसनाहट सी फैलाकर वायु की अंधेरी तरलता पर भूमक मचलने लगा था। वैसे ही सिद्धरन मरी आनंद की अभिव्यक्ति मुझे हुई। मैं कवि नहीं हूँ, मैं दार्शनिक नहीं हूँ, मुझमें पिता की ही महानता की छाया भी नहीं, न मुझमें कभी उसकी ही आत्मविस्मृत सत्यान्वेषण की वह अद्भुत तन्मयता ही रही है, जो लघु को दीर्घतम बना देती है। पर उस भीड़ को मैं देखता रह गया।

वहाँ हिन्दू भी थे, मुसलमान भी थे और स्वर उठा : क्यों कमाल ! तूने बताया तक नहीं ! सद्गुरु का समय आ गया है..... मैंने दोनों हाथ उठाकर दयनीय स्वर से कहा : ऐसा नहीं कहो दयालुओं ! ऐसा कठोर वचन मत कहो..... मेरे पसीजे हुए शब्दों ने उन्हें आर्त कर दिया। वह वेदना जैसे सबको छू गई थी।

मुझे अनुभव हुआ कि आदमी जब वृष्णा, ईर्ष्या, अहंकार और स्पर्धा से शीघ्र ही कुछ प्राप्त कर लेने के लिये काम करता है, तब वह अपने भीतर ही प्रसङ्गिष्ठ हो जाता है और अपने कार्य की छोटी से छोटी असफलता भी उसे बहुत ही बड़ी सी दिखाई देती है। उसे अपनी ठीक बात में भी तब विश्वास नहीं रहता क्योंकि एक अहंकार का उद्रेक उसकी नींवों को टोस भूमि पर नहीं रहने देता। वह डरता है। यदि वह नास्तिक होता है तो उसे परे लेता है। यदि वह आस्तिकता की ढाँवाटोल विश्वास की किरण पर भूमता है तब वह भृगतृष्णा में मटकने लगता है। मैं स्वयं नहीं, कि अभावप्रस्त मानव को किस प्रकार त्याग का -

बिताने की सचाई मिल सकती है। परंतु कबीर का जीवन यह अपूर्णता नहीं थी। चरमशांति थी वहाँ। निर्द्वन्द्वता आत्मसंतोष और आत्मयातना से नहीं आती। यह दोनों तो एक ही पहलू के क्रम से सामाजिक और व्यक्तिगत पक्ष हैं। वह तो तब मिलती है जब भीतर कोई रिक्त ही बाकी नहीं रह जाये।

पिता महान् है। वे पढ़े नहीं हैं, पर दुनिया उनसे पढ़ती है। मैं पढ़ा हूँ, लिखा हूँ क्योंकि उनके कारण, बचपन से ही कुछ पढ़े लिखे लोग घर पर आते रहे हैं, उन्होंने मदद की है, फिर भी मैं अनुभव करता हूँ कि जो वे जानते हैं वह मैं नहीं जानता।

मैंने कहा : वे सो रहे हैं। भाइयो वे सो रहे हैं।

पूर्णशांति छा गई मानों असंख्य मेघों की गर्जना थम गई हो और सब चुप हो गये हों।

मगहर की छोटी सी बस्ती में आज काम धंधा बन्द था। सब बैठे थे। मुझे सबसे बड़ा आश्चर्य्य अब हुआ। मैंने हिन्दू और मुसलमानों की बातें सुनीं।

‘कबीर साहेब हिन्दू थे।’

‘हिन्दू कैसे हुए ? वे तो हम जैसे मुसलमान थे ?’

मुझसे सहा नहीं गया। आखिर तो जो जिस दायरे में रहता है, वह उस से बाहर की बात सोच भी तो नहीं सकता। हिन्दू और मुसलमान दो अलग-अलग कुओं में पड़े हुए मेंढक थे। उनकी सारी परंपराएँ, उनके सारे फैलाव वहीं तक तो जाकर पहुँचते थे !! मुझे खेद हुआ, जीवन पर्यन्त मेरे बाप ने जो कहा उस पर अभी से चोट होना शुरू होगई थी। वे उन्हें भी बाँट लेना चाहते थे।

और इसका भी मूल क्या था ! श्रद्धा, आदर, और प्रेम। यही तो वे कबीर साहेब के लिये लेकर आये थे। उनकी राय में इससे और कुछ अच्छा, वे कर भी तो नहीं सकते थे।

मैंने समझाना चाहा, पर सोचा जाकर पिता को जगा कर कहूँ, वे हँसेंगे और फिर कुछ कहेंगे तो सारी भीड़ शर्मिन्दा हो जायेगी। यही सोच कर मैं श्रद्धा गया। पर जब मैं भीतर गया तब देसता ही रह गया।

साहेब तो सो गये थे। मैं उनका चेहरा, उस समय मंत्रमुग्ध सा खड़ा रह गया। वे ऐसे थे कि उनकी शोभा मैं कभी भी नहीं कह सऊँगा। वह ऐसे दीप से दिखाई दे रहे थे, जैसे बिना ज्योति की उजियारी फैल गई थी। अक्षय पुष्प के पास हंस पहुँच गया था। वहाँ पद्मों की परछाइयों में माये पर छत्र लगा हुआ था और मेरे पिता जैसे चंद्र, मानु और तारागणों के भीतर से निकलती ज्योति किरणों को देखकर चकित हो गये थे। आज हंस ने सुल पाया था! यही वह आदि वाणी थी, जिसका वेद भी श्रुत नहीं पा सका था।

सतगुरु हंस का रूप धारण करके समस्त शोक छोड़ कर अपने लोक को चला गया था। भृङ्ग ने फीट को पलट कर भृङ्ग बना लिया था और अपना बैरा रंग देकर उसे संग उड़ा ले चला था। नाखून से परे मलकूत पहुँचने पर उसे विष्णु की ठाकुरी दील पड़ी थी। इंद्र कुबेर बैठे थे, रंभा नाच रही थी, सैतान कोटि देवता खड़े थे। हंस बैकुण्ठ को छोड़ कर आगे चला, शून्य में ब्रह्मण ज्योति जगने लगी। ज्योति प्रकाश में निज तत्त्व को देखकर वह हंस सब ही निर्भय हो गया और उसके समस्त संशय और आतंक दूर हो गये।

दूर के महल और नूर की भूमि पीछे छूट गई। नवों मुकाम भी पार हो गया। आनंद से सब फटी को छोड़ता वह हंस तो सप्तलोक पहुँच गया।

पुरुष ने जब हंस को दर्शन दिया तब जन्मजन्मांतर का ताप मिट गया, श्राव्य प्रेम बाधत हुआ था, अपना जैसा रूप बना लिया था, जैसे सोलह स्यों का आलोक भास्वर हो उठा।

अंतकटाह पार हो गये। भ्रम और कर्म की सीमाएँ पीछे छूट गईं।

मैं अनाकु खड़ा रहा। शायद मैं अपने को भूल गया था। मैं केवल महला के अंतिम दर्शन करता रहा।

उस समय मुझे सुन पड़ा, कोई गा रहा था—

सुरत सरोवर न्हाइ के मँगल गाइये
दरपन सब्द निहार तिलक सिर लाइये ।
चल हंसा सतलोक बहुत सुख पाइये
परसि पुरुख के चरन बहुरि नहि आइये ।
अमृत भोजन तहाँ अमी अँचवाइये
मुख में सेत तँमूल सब्द लौ लाइये ।
पुहुप अनूपम वास हँस घर चलि जिये
अमृत कपड़े [ओढ़ि मुकुट सिर दीजिये ।
वह घर बहुत अनंद हंसा सुख लीजिये
बदन मनोहर गात निरखि के जीतिये ।
दुति बिन मसि बिन अंक सो पुस्तक बाँचिये
बिन करताल बजाय चरन बिन नाचिये ।
बिन दीपक उँजियार अगम घर देखिये
खुल गये सब्द किवाड़ पुरुख सों भेंटिये ।
साहब सन्मुख होय भक्ति चित लाइये
मन मानिक सँग हंस दरस तहाँ पाइये ।
कह कबीर यह मंगल भाग न पाइये,
गुरु संगत लौ लाय हंस चल जाइये ।

वही, वही तो है यह ! हंस । पहले यह सोहंग था, फिर पलट कर हंस हो गया । गगन गुफा में अजर रस भरने लगा था । बिना बाजे की भंका उठ रही थी, केवल ध्यान की अटूट तल्लीनता थी । वहाँ ताल नहीं था । जहाँ तहाँ कमल फूल रहे थे, उन पर हंस चढ़कर केलि कर रहा था । बिचंदा के ही उजियारी फैली थी, और हंस दिखाई दे रहा था । युगों युगों तृष्णा बुझ गई थी ।

‘जय ! सद्गुरो की जय !!’

भीड़ निनाद करने लगी । उस कोलाहल को सुनकर मेरा हृदय दूट-टूक होने लगा ।

अरे मेरा बाप भीतर खाट पर मरा पड़ा था और मुझे धिक्कार कि मैं रोया तक नहीं । मैं भागा । मैं फूट-फूट कर रोने लगा ! वह मुझे छोड़ गया था । हाथ मैं अकेला रह गया हूँ । अब मेरा कोई सहारा नहीं है ।

हठात् मैं चौंक उठा ।

आलम कह रहा था : कौन होते हो तुम छूने वाले ? जन्म जिंदगी तुमने उसे नीच कहा । कबीर साहेब तुम्हारे नहीं हमारे थे । हम ही उन्हें बाइजगत दफन करेंगे ।

और विक्रम कह रहा था : अरे जाओ जाओ ! तुम मुसलमानों ने इन्हें जिंदा मरवा देने की कोशिश की । वह हिन्दू थे । और हिंदुओं के ही कंधों पर चढ़कर वे आज जायेंगे ।

मुझे लगा मेरा हृदय फट जायेगा । क्या सचमुच संसार इतना मूर्ख है, मैंने सोचा । भगड़ा और वही भगड़ा, तो भी किसके पीछे ? उसी कबीर के जो इन दोनों का मज़ाक उड़ाता था ? जो मानव था, केवल मानव था ।

मुझे लगा कि इस अज्ञान के पीछे श्रद्धा करने के योग्य भी एक वस्तु थी । वह थी मेरे पिता की श्रद्धा जो इन दोनों के भीतर समान रूप से थी । वह महा कवि इन दोनों के लुद्र बंधनों से इतना ऊपर उठ गया था कि दोनों ही उसको अपना अपना स्वीकार करते हुए नहीं स्मिन्नकते थे । और मेरे सामने यह विराट भारत देश आया । एक ओर हम थे, नीच, जो नीच समझे जाते थे । मेरे पिता उन नीचों में पलने वाली महानता के प्रतीक थे, दूसरी तरफ इस्लाम था, जिसके नारों से सारा देश गूँज रहा था, तीसरी तरफ प्राचीन ऊँची जातियों के विशाल मंदिरों के घंटों की घनघनाहट थी, जो इस्लाम के सिपाहियों के घोड़ों के सुर्माँ की आवाज़ को डुबाने के लिये

अपने आपको बहारा बनाकर बज रहे थे, गूँब रहे थे, और फिर दम थे, वो सबों को धरती पर खूब दे देकर विजयी घोड़ों के द्वारा उठाई हुई धूल को दबाये रखते थे, फिर भी अपने को नीच ही कहा जाते हुए मुनते थे। और मेरे पिता एक ऐसे नये स्वप्न की खोज में थे वहाँ हिंदू हिंदू नहीं था, वहाँ मुसलमान मुसलमान नहीं होगा, इन सबसे ऊपर मनुष्य था, एक नया आदमी, नया आदमी—

मुझे लगा दिशाएं पुकारने लगी थीं—कमाल ! पहला नया आदमी खो गया है, पहला नया आदमी खो गया है—

लेकिन मैं जाग रहा हूँ, मैंने कहा और तब जब कि दोनों भगवा करने वालों का अहंकार उद्दण्ड हो रहा था, मैंने कहा : यहाँ लड़ो नहीं। जानते हो तुमने मेरे पिता की चादर पर क्या चढ़ाया है !

‘फूल हैं।’ उन्होंने कहा।

मैंने कहा ‘फूल हैं ! बेबान हमको जाने वाले पेड़ जब धरती में से रस खींचकर अपने चीपन की सबसे सुन्दर भेंट देते हैं तब ये फूल बनते हैं। तुमने देवता पर चढ़ाने वाली वस्तु को मेरे पिता पर भक्षा से चढ़ाया है क्योंकि पिता अब मिट्टी हो गये हैं। तुम मिट्टी के पीछे लड़ना चाहते हो। उठा लो यह फूल, बाँट लो इन्हें, गाड़ दो, जलादो, इस दुनिया के पहले इन्सान को अपने छोटे घमों के दायरों में बाँधने के लिये काटो नहीं, यह तुम्हारे दफनाने और जलाने से बड़ा नहीं हो सकेगा, वह बिदा था तब तुमने उसे क्यों नहीं बाँट लिया ! तब तुम लोग टरने थे। तुम्हारा मुल्तान धारता था, तुम्हारे मुला टगते थे, तुम्हारे पंडित और तुम्हारे बिगल मन्दिर जो शम्भाय के प्रतीक बनकर खड़े थे, सब टरने थे। चले बाओ !! आदर और प्रेम के नाम पर, भक्षा के नाम पर, तुम उस आवाद आदमी को अन्त में गुलाम नहीं बना सकते। वह तुम सबसे ऊपर था। वो तुम्हारे दायरों को चुनीली देकर बीठा रहा। तुम्हारे घमों के ऊपर अपने सत्य का झंडा फहरावा रहा, उसे तुम अपने घमों में दफनाना या जलाना चाहते हो ! यह असंभव है, यह अशुभव है—

और मैं पिता के पाँच पकड़ कर रीने चिल्लाने लगा : पिता ! देखते

हो ! यह लोग क्या कह रहे हैं ! यह लोग अभी तक अंधे हैं । कल तक तुम मशाल उठाये खड़े थे, तो इन सबका अन्धेरा तुम्हारी अंगड़ाइयाँ लेकर बढ़ती मशाल की लपटों को देखकर काँप रहा था और आज तुम सो गये हो, तो यह समझ रहे हैं कि मशाल धूल में गिर गई है, पर नहीं, ऐ हिन्दू मुसल-मानों ! वह मशाल मेरे कबीर के रक्त के स्नेह से भीगी हुई है, वह एक गरीब की इज्जत है, वह नीच जात का बढ़प्पन है, वह एक अनपढ़ का शा है, वह दुतकारे हुए की अपराजित मानवीयता है, उसे तुम तो क्या इतिहा भी नहीं बुझा सकेगा, वह अमर है, वह अमर है.....

पिता का वाना

यह एक और चित्र था—उसे मैं क्या कहूँ, इतिहास बोलने लगेगा.....

लोई भोंपड़े में लेटी हुई थी। कबीर बाहर से आया था।

‘लोई !’

‘आ गये ?’ लोई ने उठ कर कहा—‘कहाँ चले गये थे, सुबह से यह जा होने आईं। वहीं गये होंगे ?’

यह रुटी हुई थी।

‘कहाँ ?’ कबीर ने मुरकरा कर पूछा।

‘अरे उन्हीं बनफटों के पास।’ लोई ने कहा—‘क्या कहा था। मैं तो च भी नहीं पाती कि तुमने ऐसा कहा होगा ?’

‘क्या कहा था लोई ?’ कबीर ने कहा और रोटी हाथ में ले ली।

बताऊँ ?

‘नारी की भाँई परत
अन्धा होत भुजंग,
कबिरा तिनकी कौन गति
जो नित नारी को संग !’

कबीर हंसा । लोई ने कहा : ‘तुम भुजंग हो न ? क्यों ? नारी ऐसी बुरी होती है ! मैंने तुम्हारा कुछ नुकसान किया है !’

कबीर ने कहा : ‘अरी यही तो मैंने उन नारी से डरे हुआ से कहा था । नारी की छाया से साँप तक अंधा हो जाता है, यानी जो जहरीला होता है ।’

‘और आगे ? ठहरो चटनी पीसती हूँ । आज और कुछ रहा ही नहीं ।’ लोई ने सिल लोढ़े को संभाला और मिर्च पीसने लगी । ‘बोलो । मैं तुम्हें नरक में भेजूंगी ? क्यों ?’

चटनी लेकर कबीर ने कहा—‘तू समझती नहीं लोई ।’
‘क्यों ?’

‘वे जो नारी को विषय की ही वस्तु समझते हैं, उनके लिये क्यों ऐसा नहीं कहा जाये ? अगर मैंने सब नारियों के लिये ऐसा कहा होता, तो तुम्हसी घरधाली के साथ घर रहता ? कहीं अकेला भटकता नहीं ?’

लोई मुस्कराई । मानों प्रसन्नता आई है, उसे वह छिपाना चाहती है । कहा : ‘यही तो मैं भी सोचती थी । जिसने पतिबरता के इतने गुन गाये हों वह क्या कनफटों की सी बातें करेगा ?’

लोई गाने लगी—

कबिरा सीप समुद्र की
रटै पियास पियास ।
और तूँद को ना गहै
स्वाति तूँद की आस ।
चढ़ी अखाड़े सुन्दरी
माँडा पिउ सों खेल ।

दीपक जोषा ज्ञान का काम जरूरी ज्यों तेल ।

लोई ने अपने ताने को संभाला और कहा : क्यों कंत तुमने नारी के लिये तो इतनी अटक लगा दी, पर पुरुष पर बंधन न दिया ?

‘लोई !’ कबीर ने पानी पीकर कहा—‘पुरुष-पतंगा है । वह सतगुरु के बिना कहाँ बचता है ! परनारी तो पैनी छुरी है, वह तो अन्न अन्न काट देती है ।’

‘तुम मुझे देराकर कहते हो । ऐसे गुम भी हो पुरुष ही । तुम लोगों के मन में एक अहंकार रहता ही है, तभी तो स्त्री को तुम नीचा समझते हो ! तुम भी कनकटों में रहते, जो मैं न होती ।’

‘क्यों, तू न होती तो मैं कहीं वाम मार्गियों में जा मिलता तो !’

वह हँसा । और कहा : ‘इन दो अन्तिमों के बीच में ही सदा जीवन है लोई ।’

कबीर पाता रहा, लोई देखती रही । लोई कहने लगी, ‘कमाल की दुन्दे बिन्ता रहती है । तुम दिन भर अपनी धुन में लगे रहते हो और दगदग के आने जाने वाले साधुओं के साथ वह बैठा रहता है ।’

कबीर ने कहा : ‘यह कोई ऐसी बात नहीं है । मनुष्य अपने विचार ऊँचे आप बनाता है, लोई । बन जाने से कोई लाभ नहीं होता । योग और योग तो घर में भी हो सकते हैं । बन जाने पर भी अगर रोना-रहना बन्द नही तो उल्लेख लाभ ही क्या ! कुल बोरनी अगर गंगा नहा भी छाने से छाने पायदा क्या !’

अभी वह अपनी बात पूरी कर भी नहीं पाया था कि एक बड़ा बौद्ध-हल या मुनाई दिया । लोई चौंक उठी । कबीर बाहर निकल गया । लोई ने पथ पर आ गई । देखा, नाथ जोगियों का एक हुजूम ऊँचा-ऊँचा होकर लोई को प्रणाम कर रहे थे । कबीर हल पर बैठकर लोई को देखते-देखते कदा, ‘साधुओ, प्रणाम ! कहाँ से आना हुआ ?’

जोगियों ने नेता गिर पर घनी वस्त्रों में लोई को प्रणाम किया । लोई

कबीर की ओर ऐसे देखा जैसे वह किसी अत्यन्त दीन वस्तु की ओर देख रहा था ।

जुलाहा रामा आगे आया । उसने कहा, 'अरे कबीर, ये लोग बड़ी दूर से आये हैं । देस-देस घूमते हुए, लोगों को उबारते हुए ।'

कबीर मुस्कराया ।

उसने योगी की ओर देखा और कहा ।

अवधू भजन भेद है न्यारा ।

क्या गाये, क्या लिखि बतलाये, क्या भरमे संसारा ॥

क्या संध्या तरपन के कीने जो नहिं तत्त विचारा ॥

मूँड़ मुँड़ाये जटा रखाये क्या तन लाये छारा ।

क्या पूजा पाहन की कीने क्या फल किये अहारा ॥

बिन परचै साहव होइ नैठे करै विषय व्यौपारा ।

ज्ञान ध्यान का करम न जाने वाद करै हंकारा ॥

अगम अथाह महा अति गहरा बीजन खेत निवारा ।

महा सोध्यान मगन है बैठे काट करम की छारा ॥

जिनके सदा अहार अंतर में केवल तत्त विचारा ।

कहत कबीर सुनो हो गोरख, तरैं सहित परिवारा ॥

योगी उद्भ्रान्त हो गये ।

रामा चिल्लाया, 'कबीर तू जोगियों की बेइज्जती कर रहा है । अरे सुन मैं समाधि लगाने वाले संसार छोड़कर घर से निकले हैं । तू मामूली गिरस्त होकर इनसे टक्कर ले रहा है ?'

लोई ने कहा : 'क्यों नहीं, जिस माँ ने जनम दिया है उस माँ के लिये जोगियों ने यही तो किया कि उसे घर में छोड़ कर चले आये ।'

योगी आगे बढ़ा । उसने कहा, 'तू माया है, तू काम है, तू संसार में शृङ्खला है । जब नागिन लपलपाती हुई उलट कर आकाश की ओर चढ़ती है तब तू ही महाकुण्ड में अग्नि जला कर उसको सोख लेने के लिये लपलपाने लगती है ।'

योगी के उस रौद्र रूप को देखकर उपस्थित लोग आतङ्कित हो उठे ।
लोई सहम गयी ।

योगी ने अपना रंग जमते हुए देखकर फिर चिल्लाकर कहा :

‘ओ गृहस्थो, काल के रूप में माया तुम लोगों को ग्रसे हुए है । तुम
अव्यक्त पुरुष की ज्योति को नहीं समझ सकते । जब पत्नी आकाश की ओर
नहीं, धरती के गर्भ में उतरने लगते हैं, तब वृक्षों के पत्ते नहीं निकलते,
बालिक आग के अंकुर फूटने लगते हैं, तब जानते हो, क्या होता है । गाय
बाध को खाने लगती है ।’

उस समय योगी के मुख पर विजय का आभास दिखाई दिया । वह स्वर
उठा कर चिल्लाया, और उसका विशाल ऊपर उठ गया । उसने कहा, ‘शूल
निरंजन ।’

सारे योगियों ने दुहराया, ‘आदेश ! आदेश !’

पथ पर खड़ी हुई स्त्रियों कपिने लगीं । रामा ने बढ़कर योगी के पैरों
पर सिर रख दिया । कुछ धूढ़ी स्त्रियों ने इशारे किये । मल्लुकचन्द्र की स्त्री
झिगा गोरी थी, और सुन्दरी थी । यौवन की झलझलाती हुई प्रत्यङ्गा में
बैध कर उसका लावण्य धनुष के समान मुकने के बहाने तन गया । उसने
अपने ऊपर गर्व था । जिस समय वह मित्रा देने के लिये बाहर आई तो
योगी ने उसकी ओर मुड़कर भी नहीं देखा । वह चली गई । रामा ने कहा,
‘देखा कबीर, महाराज ने अपना काम भी नष्ट कर दिया है ।’

कबीर आगे बढ़ा ।

उसने कहा, ‘रामा, मैं एक गीत और सुनाना चाहता हूँ ।’

गीत का नाम सुनकर रामा तो चौंक उठा, किन्तु लोई ने कहा ‘सुना
कन्त । डर किसका है ?’ मानो उसे विश्वास था कि जो उसका पति कहेगा
वह अवश्य ही एक नया सत्य होगा ।

भीड़ और पास आ गई ।

कबीर गाने लगा ।

मन ना रंगाये, रंगाये जोगी कपरा ।

आसन मारि मंदिर में बैठे

नाम छाँड़ि पूजन लागे पथरा ।
कनवा फड़ाये जोगी जठवा वड़ीले
दाढ़ि बढ़ाय जोगी ह्वै गैलें वकरा ॥

योगी चिल्लाये, 'बन्द करो, वरना हम तुम्हारी बत्ती को भस्म कर देंगे।' उनके त्रिशूल तन गये थे। हवा में उत्तेजना फैल गई थी, किन्तु उस समय लोई ने चिल्लाकर कहा, 'जोगी, किसे डराते हो ? इतना भी बुनने का धीरज नहीं तो साँई से बिना दया के मिलोगे भी कैसे ?'

भीड़ पुकार उठी, 'वाह कबीरा गाये जा !'
और कबीर जो अभी तक हँसता हुआ खड़ा था उसने फिर हाथ उठा कर गाया,

जङ्गल जाय जोगी धुनिया रमोले
काम जराय जोगी है गैलें हिजरा ।
मथवा मुंड़ाय जोगी कपड़ा रँगैले
गीता वांचि कै होई गैलें लवरा ।
कहत कबीर, सुनो भई साधो
जमदरवजवाँ बांधरि जल पकरा ।

भीड़ ने ठहाका लगाया। रामा भाग गया। छिंगा लज्जा छोड़कर खिल-खिला कर हँसी। योगी क्रोध से त्रिशूल तान कर आगे बढ़ा, किन्तु उसी समय छिंगा कबीर के सामने आ गई और देखते ही देखते अनेक स्त्रियों ने कबीर की रक्षा के लिये उसे घेर लिया। योगी चप्पर में पड़ गये। एक बुढ़िया जुलाहिन चिल्लाने लगी :

'अरे किसकी मजाल है जो बत्ती में खून खच्छर करे। एक तो हम खिलाएँ और ऊपर से इनकी गाली खायें ? मरे चले आते हैं यहाँ लड़कों को बहकाने। घर को आग लगा आये तो पेट को क्यों नहीं लगा लेते ?'

भीड़ ने फिर ठहाका लगाया।

जब कबीर भीड़ में से निकल कर आया तो उसने देखा कि जोगियों का पता भी न था और रामा कान पकड़े कह रहा था :

‘जान बची लासों पाये । अब नहीं जाऊँगा, न किसी को बुलाऊँगा ।’

कबीर ने कहा, ‘रामा, शृङ्गी चमकाने से क्या होता है ! सारे बदन पर भूत मल लेने से क्या मन का मैल जल जाता है ! अगर नंगे रहने से ही योग हो जाता तो कार्श्या के सारे दोरों को योगी क्यों नहीं कहा जाता !’

मोड़ छूट गयी । छिगा एकटक कबीर को और देख रही थी । लोई ने इसे देख लिया । कबीर ने छिगा के नयनों को क्षणभर देखा और धीरे से कहा ।

‘कविरा माता नाम का मद मतवाला नाहि,

नाम पियाला जो पिये सो मतवाला नाहि ;

घायल ऊपर घाव है टोटे त्यागी सोय,

भर जीवन में सीलबैत विरला होय सो हंय ;

छिगा ने मुना, झुककर कबीर के पाँव छुए और लौटकर अपने घर की ओर चलने लगी ।

कबीर ने कहा,

प्रीत बड़ी है तुझ से बहु गुनियाला कंत,

जो हँस बोलौ और से नील रंगावों दंत ।

नैनों अंतर आव तू नेन भांप तोहि लंब,

ना मैं देखौ और को ना मैं देखन दैव ।

छिगा चली गयी ।

लोई ने कबीर का हाथ पकड़ लिया और कहा : ‘कंत आव जान बच गयी ! जोगी चले ही गये, नहीं तो खूनख़्खर हो जाता । ऐसी क्या जरूरत थी कि इतना साफ-साफ कह दिया ! सच, मैं तो डर गयी थी ।’

कबीर ने निर्भय दृष्टि से लोई की ओर देखा और बड़बड़ाया,

गगन दमामा वाजिया पड़त निसाने घाव ।

खेत पुकारे सूरमा अब लड़ने का दांव ।

तीरतुपक से जो लड़ै सो तो सूर न होय,

माया तजि भक्ती करे सूर कहावे सोय ।

सिर राखे सिर जात है सिर काटे सिर होय,

जैसे वाती दीप की कटि उजियारा होय ।

लोई ने देखा और मुस्करायी। वह मुस्कान एक अक्षय विश्वास था मानो प्राणों के कारागृह के द्वार खुल गये थे—और जिस आलोक को आज तक वह पत्थरों और लोहे से जड़े हुए वातायानों से देखा करती थी वह आज उस द्वार में से भीतर प्रवेश कर रहा था।

भोंपड़ा अपने दारिद्र्य को लिये खड़ा था। चारों ओर जुलाहों की बस्ती में आज की घटना पर तरह-तरह की बातें हो रही थीं। रामा जनमत के कारण चुप था किन्तु उसके मन में अभी तक संदेह और आतङ्क असंतोष की बैसाखियों पर लँगड़ी रुढ़ियों को खड़ा करने का प्रयत्न कर रहे थे। छिंगा छप्पर के नीचे बैठी आज सोच रही थी कि वह कितनी महान छाया के सामने से निकल गयी थी। यह भाव भी उसके सामने स्पष्ट नहीं था। उसे ऐसा लग रहा था जैसे बहुत दूर, बहुत ऊँचे पहाड़ के ऊपर कोई देवता का मन्दिर था जहाँ वह जारही थी, गयी थी किन्तु पहुँचने पर भी उसे लगा था कि देवता अब भी उतनी ही ऊँचाई पर था जितना वह धरती पर से सिर उठाकर देखती थी।

लोई ने पीढ़ा बिछा दिया था। कबीर सूत की पौनी सुलभाता हुआ बैठा था। लोई ने घड़े उठा लिये और पानी भरने चली गयी। कमाल भीतर आया।

‘दादा’, उसने कहा, ‘तुम कहाँ चले गये थे?’

कबीर ने मुस्करा कर कहा, ‘बेटा, तुझे ढूँढ़ने गया था।’

अबोध बालक समझ नहीं सका। उसने कहा, ‘दादा, भगड़ा क्या हो रहा था?’

कबीर ने उत्तर दिया, ‘बेटा, आज बस्ती में अंधों के बीच में एक हाथी आगया था।’

‘फिर?’ कमाल ने पूछा।

‘फिर!!’ कबीर ने कहा—

‘ज्यों अंधरे कौ हाथिया सब काहू कौ ज्ञान,
अपनी अपनी कहत हैं काको करिये ध्यान।’

कमाल ने देखा और आँखें फाड़कर देखता रह गया।

नाथ जोगियों की बात काशी में फैल गई ।
 और कुछ ही दिन में सारी काशी बौखला उठी ।
 मुल्ला लोग कहने लगे । पंडित लोग कहने लगे । कहने को क्या नहीं
 कहा ।

एक मुल्ला नमाज़ पढ़ कर निकला । उसने कुछ नीच जात के लोगों को
 कलमा पढ़ाया था । कबीर राह पर जा रहा था ।

देखा तो गाने लगा—

अल्लह राम जीव तेरी नाई,
 जन पर मेहर करहु तुम साई ।

क्या झूठो भीमहि सिर नाये क्या जल देह नहाए
 खून करै मसकीन कहावै गुन को रहे छिपाए ।
 क्या भो उज्जू मज्जन कीने क्या मसजिद सिर नाए ।
 हृदये कपट नेजाव गुजारै का जो सका जाए ।
 हिंदू, एकादशि चौविंसी रोजा मुसलिम तीस बनाए ।
 बारह मास कहो क्यों टारो ये केहिमाहँ समाए ।
 पूरव दिसि मे हरि को बासा पच्छिम अलह मुकामा
 दिल में खोज दिले में देखो यहै करीमा रामा ।
 जो खोदाय मस्जिद में बसतु है और मुलुक केहिकेरा,
 तीरथ मूरत राम निवासी दुइ महँ कितहँ न हेरा ।
 वेद किताब कीन किन भूछा भूछा जो न बिचारै
 सब घटि माहि एक करि लेखँ भै दूजा करि भारै
 जेते औरत मर्द उपाने ॥ सो सब रूप तुम्हारा
 कबीर पोंगडा— अलह राम का सो गुरूपीर हमारा ।

भीड़ ने जयजयकार किया । नीच जातों में हल्ले हो गये । श्रौतों ने कबीर पर फूल बरसाये । बच्चे उनके नाम का जयजयकार करने लगे ।

नाथ जोगी सामने नहीं आते थे । वह उनकी असांसारिकता को देखकर मज़ाक उड़ाता था । उनके जादू टोने फीके पड़ने लगे । भीख पर पलते साधुओं के विरुद्ध उसने जो पुकारा तो काशों के बच्चे दुहराने लगे—

सती न पीसै पीसना
जो पीसै सो रांड
साधू भीख न मांगई
जो मांगै सो भांड !

वह गरीब था । जुलाहा था । मेहनत करता । खाता । परिवार पालता । पोथी वालों को देख कर लड़के चिढ़ाते—

मेरा तेरा मनुआं कैसे एक होइ रे,
मैं कहता हूँ आंखिन देखी,
तू कहता कागद की लेखी,
मैं कहता सुरभावन हारी,
तू राख्यौ अरुभाई रे !
मैं कहता तू जागत रहियो
तू रहता है सोइ रे ।
मैं कहता निर्मोही रहियो
तू जाता है मोरि रे ।

जुगन जुगन समभावत हारा
कहा न मानत कोई रे ।
तू तौ रंडी फिरै बिहंडी
सब धन डारे खोइ रे ।

उसने एक अत्यन्त धनी सेठ के द्वार पर लगी भूखों की भीड़ देख कर एक दिन गाया—

नाम सुमिर, पछतायगा ।
पापी जियरा लोभ करत है

आज काल उठि जायेगा ।

लालच लागी जनम गँवाया

माया भरम भुलायेगा ।

पेश्याओं के कोठों की ओर जाते सुन्दर युवक तस्खों को देखकर उसने मुनाया :

भजु मन जीवन नाम सवेरा,

सुन्दर देह देख निज भूलो

भ्रष्ट लेत जस बाल बटेरा

यह देही को गरब न कीजें

उड़ पंछी जस लेत बसेरा ।

बजार में घबड़ाहट फैल गई । रईसों के बेटे लोकलाज से छिप छिप कर भागने लगे ।

भरे मन्दिर में उसने गुंसाईं जी पर चोट की—

ऐसी दुनिया भई दिवानी

भक्ति भाव नहिं बूझै जी

कोई आवे तो बेटा मागें

यही गुसाईं दीजे जी

कोई आवे दुख का मारा

हम पर किरपा कीजे जी

कोई आवे तो दौलत मांगे

भैट रुपया लीजे जी,

कोई करावें ब्याह सगाई

सुनत गुसाईं रीझै जी,

सांचे का कोई गाहक नहीं,

भूठे जगत पतीजे जी

कहैं कबीर सुनो भाई साधो

अंधों का क्या कीजे जी ।

नीच जातियों में तो खलबली मच गई थी । वे कबीर को घेरे रहते ।

घर पर लोई देखती । कबीर अलमस्त फक्कड़ बैठा रहता । गुँसाई जी का नौकर फटकारने आया । बोला—ऐ जुलाहे । जानता है किससे टकर ले रहा है ?

गुँसाई ने नाथ जोगियों की खबर भेज दी थी । वे भी कबीर की हत्या करना चाहते थे । कबीर ने भीड़ में ही कहा : टकर !!

खुल खेलो संसार मैं बांधि न सक्के कोय ।

जा जाकर कहदे—कबीर ने कहा है—

जाकौ राखे साँझ्या मारि न सक्कै कोय

नौकर के पीछे और नौकर आगये थे । पर कबीर ने तान छोड़ दी—

डर लागे हांसी आवै

अजब जमाना आया रे !

धन धौलत ले माल खजाना

वेश्या नाच नचाया रे ।

सूट्टी अन्न साध कोहू माँगै

कहैं नाज नहिं आया रे

कथा होय तहँ सोता सोवै

वक्ता भूँड़ पचाया रे ।

होय जहां कहिं स्वांग तमासा

तनिक न नींद सताया रे,

भंग तमाखू* सलफा गाँजा

सूखा खूब उड़ाया रे ।

और जब यह संवाद गुँसाई जी के पास पहुँचा वे क्रुद्ध हो उठे । बोले वह ईश्वर को तो मानता है न !

ऋषि ने कहा : 'मानता है महाराज, पर वह वेदों को नहीं मानता । कहता है व्यर्थ है । महाराज ! वह तो कहता है संस्कृत कुंए का बंधा हुआ पानी है,

* तमाखू शब्द छेपक लगता है क्योंकि कबीर के समय में भारत में तमाखू नहीं थी ।

बढ़ता पानी तो भास्ता है । [अर्थात् जन भाता]

'अच्छा !!' गुंसाईं जी ने सिर हिलाया ।

'बलस्त क्या हो आया, मुसलमान हो गया ! पहले तो अन्तर्गतों को मानता था ।'

'अब नहीं मानता !' ये चींके ।

'मानता ! महाराज ! वह तो खुले आम कहता है कि राम दशरथ का बेटा मैं नहीं मानता । मेरा राम तो उससे परे है, उससे भी परे है !'

'निगुंथिया है !'

'नहीं महाराज ! वह तो कहता है—

'निगुंथ सगुंथ से परे तहें हमारा ध्यान !'

'अरे तेरा ध्यान !!' एक वृद्ध ब्राह्मण ने धुंसा से कहा ।

'महाराज पहले से तो वह बहुत बदल गया है ।' श्रुति ने कहा—'पहले वह जोगियों से डलटवाचियों कहता था, छेड़ता तो तब भी था, पर अब तो खुले आम इज्जत उतारता है । उसे दर गी नहीं । मैंने कहा तो बोला कि हाँ मेरा रक्षक है । क्या कहता है जानते हैं—

'बाल न बाँका करि सफ़ जो जग वीरी होय ।'

'अच्छा जी !!' गुंसाईं जी ने कहा । 'वह है किस पद्य का ?'

'किसी का नहीं महाराज ! बस भक्ति, ज्ञान की अजीब बातें कहता है । बाहरों वह नहीं मानता । कुछ पण्डित क्या बाँच रहे थे । ऊपर भूमे इफट्टे हो रहे थे । पंडितों ने उन्हें शोर करने पर डाँटा तो भट भूमों की शोर राधा होकर बोल उठा—

कविर हुआ है कूकरी

करत भजन में भंग,

पाको टुकड़ा डारि के

सुमिरन करो निसंग ।

'पंडित बिचारे कहाँ से लाते । चले आये ।'

'घमनाय हो गया,' गुंसाईं जी ने कहा ।

वृद्ध ब्राह्मण ने कहा : अब क्या करें ? 'गंगा घाट पर मैं माला के

था । उधर से कुछ औरतें निकली । मैंने माला फेरते-फेरते देखा कि कोई बदमाश उन्हें छेड़ न दे, बस भट ही तो बोल उठा—

माला फेरत जुग भया फिरा न मन का फेर
कर का मनका डारि दे मन का मनका फेर ।
कबिरा माला मनहि की और संसारी भेख
माला फेरे हरि मिलें गले रहँट के देख ।
माला तो कर में फिरै जीभ फिरै मुख माहि
मनवाँ तो दहुँ दिसि फिरै यह तो सुमिरन नाहि ।

सब औरतें हँसने लगीं । मेरी तो नाक कट गई । और यही नहीं । पिंड-दान देने बहुत से गाँव के लोग आये थे । पण्डा बता रहे थे, वे सिर मुड़ा रहे थे । बोल उठा—

मूँड़ मुँड़ाये हरि मिलें सब कोई लेओ मुँडाय,
वार वार के मूँड़ते भेड़ न बैकुण्ठ जाय ।

गुँसाई जी ने कहा : 'उसकी पिटाई क्यों नहीं होती ?'

'महाराज सारी नीच जातें उसके साथ हैं । अकेला तो उसे वे लोग छोड़ते ही नहीं, शेर बना घूमता है ।'

'अजी !' पुजारी नैन उजागर ने कहा : 'कथनी करनी का बड़ा हुल्लाह मचा रखा है उसने ।'

'तो भई वह कहता क्या है ? सगुण नहीं, निगुण नहीं, फिर है क्या उसका भगवान ?'

'महाराज मैंने पूछा था ।' ऋषि ने कहा । 'बोला, न वह भारी है, न हल्का है, मैंने तो उसे देखा नहीं । और जो देख भी लिया होता तो तुम विश्वास कब करते । साईं जैसा है वैसा ही रहेगा । उसे अद्भुत मत कहो, और कहते हो तो छिपा कर धरलो । वह सब तो वेद कुरान में भी नहीं लिखा । न कोई पाता है, न खोता है, उसके पक्ष में तो सब भरपूर है, ज्यों का त्यों है ।'

'उसका गुरु कौन है ?'

‘गुरु को वह गोविंद से बड़ा बताता है ।’

‘सूफी है, यवन !’

‘नहीं महाराज !’

‘तो सहज यानी होगा या पुराना शैव तो नहीं है ?’

‘नहीं महाराज ।’

‘शाक्त है ?’

‘शाक्तों के लिये तो उसने जोर से कहा था —

कबीरा संगत साधु की

जौकी भूसी खाय

खीर खाँड भोजन मिलै

साकट संग न जाय ।

शाक्त गाली देने लगे । रोकनेवालों ने रोका तो कबीर ने कहा कि ‘कुत्ते और शाक्त को बोलने दो, जवाब मत दो ।’

श्रृष्टि ने श्रॉलैं काड़ दी ।

‘बाप रे ! डरता नहीं । वे तो भयानक लोग होते हैं श्रृष्टि !’

‘महाराज ! कल तो उसने गजब कर दिया । कुछ सिपाही जुलाहों को मार रहे थे । कुम्हार चाक चला रहा था । कबीर आगे बढ़ आया और ललकार कर बोला —

‘माटी कहै कुम्हार ते तू का रुँदे मोहि ।’

इक दिन ऐसो होयगा हौं रोदोंगी तोहि ।’

‘सिपाही चले गये ?’

‘हाँ महाराज । नगर में कुछ तपस्वी आये । लोग उनके दर्शन करने जा रहे थे । एक साधू जीवित ही समाधि में उतरने वाला था । कबीर ने फट्ट ही तो चोट फस दी ।’

‘क्या कहा ?’

‘क्या कहा था ?’ श्रृष्टि ने वृद्ध से पूछा ।

‘बोला’, वृद्ध ने कहा —

दुर्लभ मानस जन्म है देह न बारम्बार
तरवर ज्यों पत्ता भड़ै बहुरि न लागै डार ।

हमने रोका, बुद्धि की दुहाई दी तो बोल उठा—तुम तो चले हो ।
आजाद नहीं हो । बँधे हुए हो—

‘जैसा अनजल खाइये तैसा ही मन होय
जोसा पानी पीजिये तैसी वानी सोय ।’

गुँसाई जी हिल उठे ।

काशी के दशाश्वमेध घाट पर ब्राह्मणों में स्नान करते हुए बहस हो रही थी ।

रघुपति मिश्र ने कहा : क्या कहते हो । हम नहा कर चले तो कहने लगा—उस नहाने धोने से क्या लाभ जो मन का मैल नहीं जाय । पानी में मछली तो सदा ही पड़ी रहती है पर धोने से क्या बास जाती है ?

परिडित कथा वाचक राधेशरण ने कहा—मैं तो काशी छोड़ जाऊँगा ।

‘क्यों क्यों ?’ सबने पूछा ।

परिडित हँ आसे होकर बोले : अब मुझे ही बताना होगा । बोला—

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित हुआ न कोय

एकं अक्षर प्रेम का पढ़े सो परिडित होय ।

मैंने जो घूर कर देखा तो बोल उठा—

परिडित और मसालची दोनों सूंके नाहि

औरन को कर चाँदना आप अँधरे माँहि ।

परिडित नीलकण्ठ भी साथ थे । हमने कहा—जुलाहे ! तू समझ ! पंडित कीलकण्ठ ने भी कहा तो बोलने लगा—

ज्यों अँधरों की हाथिया सब काहू को ज्ञान,

अपनी अपनी अपनी कहत हैं काको धरियें ध्यान ।

अब भी काशी में रहने का धरम है ? ब्राह्मणों को ऐसे जुलाहे फटकारने

लगेगे तब तो काम चल चुका । प्रजा क्या कहेगी ?'

'प्रजा यही कहेगी जो अब कह रही है । सारे शूद्र उसी की जय बोला करते हैं । सत्यानाश हो गया । मुझे भंगी छू गया । मैंने खड़ाऊँ मारी तो बोला —

पंडित देखा मन यों जानी !

कहु घों छूत कहाँ ते उपजी

तबहि छूत तुम मानी ।

नादर बिन्दु रुधिर एक सँग

घट ही मैं घट सज्जे

आष्ट कमलः को पुहुमी आई

कहूँ यह छूत उपजै ।

लख चौरासी बहुत वासना

सो सब सरि जो माटी

एक पाट सकल बैठारे

सीचि सेत धों काटी ।

छूतहि जैवन छूतहि अचवन

छूतहि जग उपजाया,

कहत कवीर ते छूत विवर्जित

जाके सँग न माया ।'

'अनर्थ हो रहा है । ब्राह्मणों ! जागो । धर्म के लिये उठो । उपर यवनों ने तो नाश कर ही रखा है, और यह नीच लोग तो वेद का टाट ही उलट देना चाहते हैं.....'

परिहृत रघुपति मिश्र ने हाथ उठा कर कहा—दीन बन्धु, दयानिधे, शिवशम्भो, शिवशम्भो.....

कबीर ने कहा : लोई । मुझे चारों ओर मुसीबत दिखाई देती है । लोग जो कहते हैं वह करते नहीं । कथनी आसान है मीठी है, करनी कठिन है विष है । लेकिन कथनी छोड़कर करनी पकड़ने से ही विष भी अमृत हो जाता है ।

लोई ने बैठकर चर्खा चलाते हुए कहा : कंत । मुझे तुम्हारे वे दिन याद आते हैं जब तुम जोगियों में उलट बांसियां गाते फिरते थे ।

कबीर ने कहा : मैं अपने जीवन को पलट कर देखता हूँ लोई । मुझे अजीब सा लगता है । मैं नीच कुल में जन्मा । रामानन्द गुरु ने मुझे चेत दिया । वह सचमुच एक भट्का था । मैंने देखा मैं उस उपदेश के फलस्वरूप एक बार अपने पुराने भय और बंधन तोड़ सका । मैंने देखा जोगी, सूफी, अवतारवादी, पुराणवादी, वेद और कुरानवादी सब छोटे थे । और मैंने देखा भगवान का रहस्य इन सबसे परे है । मैं उसे ही गाता रहा लोई, पर अब देखता हूँ, अब अनुभव करता हूँ, कि संसार तो प्रेम है । धर्म क्या है ? संसार में ढङ्ग से रहना धर्म है और कुछ नहीं ।

लोई ने उठ कर कहा : कमाल पूछता था ।

‘क्या ?’

‘यही कि दादा बदलते क्यों हैं ?’

‘उससे कह लोई—

मारग चलते जो गिरै
ताको नहीं दोस
कह कबीर बैठा रहे
ता सिर करड़े कोस ।
कहता तो बहुता मिला
गहता मिला न कोइ ।
सो कहता बहि जान दे
जो नहि गहता होइ ।

करनी विन कथनी कथै

अज्ञानी दिन रात

झूकर ज्यों झूबत फिरै

सुनी सुनाई बात ।

लोई मुस्कराई । बोली : 'यही मैंने कहा था ।'

'क्या कहा था लोई ।'

'यही कि त्रिष तरह पहले गुट्नीं पर चलते हैं फिर दोनों पाँव पर चलने
हैं, वही तरह आदमी की समझ भी धीरे धीरे ही पक्की है ।'

लोई का ताना

मैंने पूछा था : अम्मा ! दादा कहाँ चले गये हैं ?

अम्मा तब बैठी ताना कस रही थी । वह काम करती गई और उसने कहा था । मैं पूछता वह बताती ।

‘वेटा ! मैं कैसे बताऊँ ?’

‘क्यों ?’

‘केवल यही जानती हूँ कि वे चले गये हैं ।’

‘तो क्या माँ वे हमें छोड़ कर चले गये हैं ? जैसे और साधू सन्यासी जोगी घर छोड़कर चले जाते हैं ?’

‘नहीं वेटा ! वे ऐसे न थे । वे तो गृहस्थ थे और उन्होंने कभी बन को अपनी मुक्ति का रास्ता नहीं समझा ।’

‘तो फिर वे क्यों गये ?’

‘वेटा ! दुनिया को जब तक आदमी घूम फिर कर देख नहीं लेता तब तक उसे चैन नहीं आता ।’

‘माँ चुप रही थी । मैंने उसके मुँह पर एक करुण छाया देखी थी । उसने

फिर कहा : बेटा ! तेरा बाप कोई मामूली आदमी नहीं है, इतना मैं जानती हूँ । वह बड़ा कवि है । लोग उसका नाम डरते हुए लेते हैं । जब वह काशी में था, तब लोग उससे घबराते थे । वह साधुओं की संगत में बैठता था । साधुओं से बड़े बड़े सवाल जबाब होते थे । साधू हार जाते थे । एक किसी ने कह दिया कि कबीर तो लवार है । घर में नारी के मोह में फंसा हुआ है और दुनिया को उपदेश देता फिरता है । आदमी ही तो ये वह भी । बात लग गई चले गये ।

माँ ने आँखें पोंछी ।

‘तो क्या वे अब कभी नहीं लौटेंगे !’

‘वे अवश्य लौटेंगे बेटा । जरूर आदेंगे । वे क्या वहाँ शांति पा सकते हैं ? नहीं, कभी नहीं । वे तो कहा करते थे—

तेरा सोई तुझ मे

ज्यों पृथुपन मे वास

कस्तूरी का मिरग ज्यों

फिर फिर हूँ धै पास ।

यह कह कर तो उन्होंने रमते जोगियों को चुप कर दिया था बेटा ।’

माँ ने बड़े कोमल और मीठे स्वर से गाया और मैंने उसके मुह पर दिव्यामा देखी—

जा कारन जग हूँ ड्रिया

सो तों घटि ही माँहि

परदा दिया भरम का

तातें सूभै माँहि ।

जेता घट तेता मता

बहु बाना बहु भेख

सब घट व्यापक है रहा

सोई आप असेल ।

भूला भूला क्या फिरें

सिर पर बधि गई बेल

तेरा साँई तुझ में
 ज्यों तिल माँही तेल
 ज्यों तिल माँही तेल ।
 सब घट रहा समाय
 ज्यों चमकन में आगि
 तेरा साँई तुझ में
 जागि सकै तो जागि ।
 पावन रूपी साँइयां
 चित चमकन लागै नहीं
 ताते बुझि बुझि जाय ।

माँ गा कर शाँत हुई । मैंने पूछा : अम्मा !
 'क्या है वेटा ?'
 'माँ लोग कहते हैं वे सबसे लड़ जाया करते थे !'
 'भूठ कहते हैं वेटा । वस उनमें एक बात थी । वे बुराई को देख कर चुप
 रहना नहीं जानते थे । ढोंगी से उन्हें चिढ़ थी । बहुत से लोग मन्दिर में
 बैठे माला जपते हैं, मुँह से राम राम करते हैं, छुआछूत करते हैं, पर हिंसा भी
 करते हैं, यह सब उन्हें पसन्द नहीं था । वे तो कहते थे—
 शून्य मलै अजण मरै

अनहदहू मरि जाय ।
 राम सनेही ना मरै

कह कवीर समुझाय ।
 मैंने पूछा : माँ ! वे क्या जोगियों की तरह लोगों को डराते थे ?
 माँ ने स्तिर हिला कर बड़े गर्व से कहा—वेटा ! कैसे कहूँ ! जोगी
 होंगे उनके सामने । वे तो प्रेम के भूखे थे । प्रेम ! प्रेम ही उनका

माँ अपने उल्लास को छिपा नहीं सकी, उसने कहा—प्रेम की साधना करते करते तो उन्होंने देखा था कि यह संसार प्रेम के ही बल पर चल रहा है। माँ ने गाया—

सीस 'उतारै भुइ' घरें
ता पर राखे पाँव ।
दास कबीरा यों कहै
ऐसा होय तो आव !
छिनहि चढ़ै छिन उतरे
सो तो प्रेम न होय ,
अघट प्रेम पिंजर बसै
प्रेम कहावै सोय ,
जब मैं था तब गुरु नहीं
अब गुरु हैं हम नाहि,
प्रेम गली अति सांकरी
ता मैं दो न समांहि ।

माँ तो अपने को भूल गई थी। उसे उन शब्दों में लग रहा था जैसे पिता सामने खड़े हो गये हों। उसने कहा : बेटा प्रेम रख पीने की चाह रखने वाला कभी मान नहीं रख सकता, एक म्यान में दो खद्ग तो साथ साथ रह ही नहीं सकते। तेरे पिता क्या यही नहीं कहते थे। मैं कैसे मान लूँ कि वे इसीलिये घर को छोड़ गये हैं। उन्होंने ही तो कहा था—

कांच कथीर अघीर नर
ताहि न उपजै प्रेम ।
कह कबीर कस नीस है
कै होरा कै हेम ।
कसत कसौटी जो टिकै
ताको शब्द सुनाय ।
सोई हमारा वंस है
कह कबीर समुझाय ।

माँ जब अकेली होती तो मैं देखता कि वह ताने पर काम करती रहती, र कभी कभी वह विह्वल स्वर से बोलने लगती : चले गये हो चले जाओ । र सच कहो तुम्हें कभी घर की याद नहीं आती ? तुम्हें कभी कमाल याद नहीं आता ? आखिर जिस बड़े धन को खोज खोज कर हार रहे हो, उसे घर बैठे क्या जीत नहीं सकते थे ? मैं जानती थी तुम कभी कभी धबरा जाते हो । मैं जानती हूँ तुम जोगियों की तरह नीरस नहीं थे । तुमने कभी मेरा अपमान नहीं किया । और उस बार तुम सात दिन को चले गये थे तो तुमने क्या कहा था—

विरहिन देय सँदेसरा
 सुनो हमारे पीव ।
 जल विन मच्छी क्यों जिये
 पानी में का जीव !
 अँखियाँ तो भाँई परी
 पंथ निहार निहार ,
 जीहडियां छाला परा
 नाम पुकार पुकार ।

मैंने हँस कर कहा था : ओ बैरागी ! क्या कहते हो । कोई सुनेगा तो क्या कहेगा ।

पर तुमने कहा था : लोई ! मैं और तू दो नहीं हूँ । प्रेम तो मैंने तुम्हसे ही सीखा है । मैं तेरी वेदना को जब समझता हूँ तब ही मुझे लगता है मैं राम के पास पहुँच गया हूँ । तेरे विरह की शक्ति ही मेरी जड़ता को, मेरे अहंकार को नष्ट करती है । तू होती है तो मैं राम को अपने में पाता हूँ, मुझे फिर तृष्णा नहीं रह जाती लोई ! तू प्यार करना जानती है । इस प्रेम से हं अंडकटाह चल रहा है । यह एक तरह का आलोक है ।

माँ ने आँखें पोंछ लीं थी और वे फिर अपने आप से कहने लगती थीं—

मेरे कन्त ! तुम चले गये हो । दुख तो होता है पर जब तुम लौट कर मिलोगे तब कितना न अच्छा लगेगा । तुम अपना भरमना छोड़ आओगे और मैं फिर जो उठूँगी । मुझे एक एक बात याद है । तुम जाओ । मैं तो अभी से गाती हूँ बलम, तुम जहाँ भी हो वहीं से सुनो, तुम्हीं तो कहते थे, फिर आज क्या याद नहीं आयेगी—

कैं विरहिन को मीच दें
कैं आपा दिखलाय ।
आठ पहर का दाभना
भोपे सहा न जाय ।
येहि तन का दिवला करे
वाती मेलों जीव
लोह सीचों तेल ज्यों
कय मुख देखों पीव ।
हवस करे पिय मिलन की
औ सुख चाह अंग ।
पीर सहे विनु पदमिनी
पूत न लैत उछंग ।
भुए पीछे मत मिली
कहै कबीरा राम ।
लोहा माटी मिला गया
तब पारस केहि काम ।
पिय विन जिय तरसत रहै
पल पल विरह सताय ।
रैन दिवस मोहि कल नहीं
सिसक सिसक जिय जाय ।

और मा फूट फूटकर रोने लगी थी । मैं भी रोने लगा था, पर मा को पता न चल जाये इसलिए मैं भीतर नहीं गया था, बाहर ही घुटनों में मुँह

दिये बैठा रहा था। कब तक मां रोती रही थी यह याद नहीं रहा, पर जब भीतर गया था तो देखा था, माँ धरती पर छाती के बल सो गई थी, उसके मुँह के चारों तरफ उसके सिर के खुले बाल बिखर गये थे। और नींद में भी उसके मुख पर मुझे एक बड़ा मीठा सा दुलार दिखाई दिया, वह कितनी करुण थी, "मेरी मां" "मेरी अम्मा" "मेरा वह पेड़, जिसने धूप में जल जल कर भी मुझ पर छाया कर रखी थी".....

माँ ने कहा था —

एक दिन कबीर बाजार में चला जा रहा था। गुँसाई हरिहरानन्द चले आ रहे थे। उनकी बड़ी प्रसिद्धि थी कि वे त्यागी थे। उनके दर्शनी उनके साथ-साथ आ रहे थे।

कबीर उन्हें देखकर एक किनारे हट गया।

गुँसाई जी ने देखा। अभी तक उसने प्रणाम नहीं किया था।

पूछा : ऋषिलाल !

‘हां महाराज !’ ऋषिलाल ने कहा। वह उनका चेला था।

‘यह जुलाहा वही है न जिसने कारी में ऊधम मचा रखा है ?’

उस वक्त भीड़ जमा होने लगी।

ऋषि ने कहा : देखता नहीं। गुँसाई महाराज चले आ रहे हैं। कैसा कलि है ! प्रणाम तक नहीं किया जाता। जानता नहीं वे कितने त्यागी हैं।

कबीर खड़ा रहा। फिर उसने चिल्ला कर कहा—

कबिरा खड़ा बाजार में सबकी मांगी खौर,

ना काह से बाजार —

कबीर ने फिर कहा—

कबिरा राधा यगार में लिये ललुलिया लाल,
जो घर जाये सायना सो भलो लुलारे लाल ।

अपि पीछे दृष्ट गया । भीष भिल्लाई । कबीर की जग ।

‘अरे !’ अपि ने कहा : ‘अपि होमये दो । बाभे नुरे की पदपान नही ।
काशी का त्यागी परमाधी राधा है और लाल भग कबीर की भोल रहे दो ।
इसका धर्म कहीं है ?’

गुँसाई जी ने कहा : जाने दे गलत । उगे खोज । राह चल । कल को
दुनाल है । समय का फेर है ।

कबीर ने कहा : गुँसाई मदाराम की जग में भग बाधते हैं तो कपी मदी
बनते तुम ! अरे पागलो ! काशी के रहने वालों ।

जहँ आपा तहँ आपदा

जहाँ रोग्य तहँ रोग ,

कह कबीर कैसे मिले

चारे दीरय रोग ।

अरि क्रुद्ध हो उठा । उगने कहा : ए नृपादे ! गू मदी जानना ग
‘सत्संग कर रहा है !

कबीर ने हाथ बांध कर कहा : मदगज ! आप कंध न करें । उगा
म नने नदना है क्योंकि आरकः एव मेरे कामः बट गया है ।

कबीर सोचता रहा । फिर कहा : लोई । हम गरीब हैं । लेकिन क्या तू इससे डरती है ?

लोई ने अभय नेत्रों से देखा ।

कबीर ने कहा : यह गरीबी बहुत अच्छी है लोई । गरीब ही सबका मुँह देखता है । दीन को कोई नहीं देखता । दीन को गर्व नहीं होता । मुझे यह दीनता भली लगती है लोई, यह नर को देवता बना देती है । दीन ही सबसे आदर से बात करता है । वही तो बड़ा है लोई जिसमें स्वभाव की नम्रता है ।

लोई ने कहा : हम नेहनत करके खाते हैं कंत । किसी का माल तो नहीं मारते ?

कबीर ने कहा : हम झुकते हैं, परन्तु अपने को यों झुकाना अच्छा है कि दूसरों के लिये झुकना । झुकने वाला पलड़ा ही तराजू में भारी होता है लोई । पानी ऊपर नहीं टिकता, नीचे आकर टिकता है । जो नीचा होकर भरता है वह पीता भी है, जो सिर्फ ऊँचा बनता है, वह तो प्यासा ही चला जाता है ।

जो दबे हुए अधीन हैं, नीचे नीचे हैं, यह सब पार लग जायेंगे लोई, पर जो ऊँचे हैं; कुलीन हैं, इनका जहाज अभिमान का है, वह इस संसार के समुन्द्र में हमेशा डगमगाता है । यह डूब भी जायेगा ।

लोई ने कहा : दीन हम नहीं हैं कंत ! दीन तो वे हैं जो आत्मा बेचकर पाप से पेट भरते हैं, जो कुछ दिनों के रहने के लिये दूसरों के पेट काटते हैं, गर्व करते हैं । लेकिन मैं तो और बात कहती थी !

‘वह क्या ?’

‘जो कहीं कोई साधू आ गया तो कैसे सत्कार करोगे ।’

कबीर ने दरी पर लेट लगाते हुए कहा—

चाह गई चिता गई

मनुआ बेपरवाह ।

जिनको कुछ न चाहिये

सोई सहंसाह ।

मरि जाऊँ माँगू नहीं

अपने तन के काज ।

परमार्थ के कारने

मोहि न आवै लाज ।

लोई प्रसन्न सी पास पड़ी चटाई पर लेट रही ।

मौ ने कहा : बेटा कमाल ।

मैं पट्टी बुदका लिये बैठा था । पट्टीस के बर्षों से मैं अच्छा लिखता था ।
मौ ने मेरी पट्टी देखी । मुझे क्या खबर थी कि वह कुछ भी पढ़ना नहीं
जानती थी । पर उसकी आँखें तेज़ थीं ।

मैंने पूछा : अम्मा ! कैसी लिखी है ।

‘अच्छी है बेटा ।’ मौ ने कहा और साट की पाटी से पीठ टेक कर बैठ
गई । बोली : ‘तू अपने मन से भी कुछ लिख सक्ता है ।’

‘नहीं अम्मा । कोई बोल दे तो लिख लूँगा ।’

‘सच !!’ मौ की आँखों में आँसू आगये । वह बहुत प्रसन्न हुई थी । उसकी
खुशी देखकर मेरी हिम्मत बँधी थी । कहा था : तू बोल मौ । मैं लिखूँगा ।

‘लिख लेगा ?’ उसने अचरब से पूछा ।

‘क्यों नहीं मौ ! तू बोल तो सही ।’

‘अच्छा लिख ।’ मौ ने कहा ।

मैं लिखने लगा । मौ बोलने लगी—

मन तू मानत क्यों न मना रे ।

‘धीरे धीरे बोल अम्मा ।’

‘अच्छी बात है ।’

मौ बोलती गई । मैं लिखता गया ।

लिख कर मैंने कहा : पढ़कर देख अम्मा ! ठीक लिखा है !

वह क्षण भर ठिठकी । फिर उसने पढ़ा :

मन तू मानत क्यों न मना रे

कौन कहन को कौन सुनन को

हुआ कौन जना रे ।
 दरपन में प्रतिबिम्ब जो भासे
 आप चहूँ दिसि सोई
 दुविधा मिटै एक जब होवै
 तो लख पावै कोई ।
 जैसे जल ते हेम बनत है
 हेम धूम जल होई
 हीसे या तत वाहू तत सों
 फिर यह अरु वह सोई,
 जो समझै तो खरी कहन है
 ना समझै तो खोटी,
 कह कवीर दोऊ पख त्यागी
 ताकी मति है मोटी ।

माँ चुप हो गई । मैंने कहा ठीक है ?

‘हाँ !’

‘बिल्कुल ठीक है ?’ मुझे आश्चर्य हुआ ।

‘हाँ !’ माँ ने कहा ।

‘यह कैसे हो सकता है !’ मैंने कहा—‘आज तक ऐसा कभी नहीं हुआ ?
 अब के कैसे जादू हो गया । तू बताती क्यों नहीं ?’

माँ ने मुझे रुठा देखा तो मुझे छाती से लगा लिया । कहा: बेटा । बहुत
 दिन बाद वह दिन भी आगया । तेरे बाप के अनमोल बोल बिखरे पड़े हैं ।
 उन्हें तू बटोर लीजो भला ।

माँ को कितनी शांति मिल रही थी । मुझे तब मालूम न था कि वह पढ़ना
 लिखना नहीं जानती थी पर वह इतना जानती थी कि यह सब कुछ कीमती
 कीमती था, जिसकी रक्षा करना आवश्यक था ।

उस समय मैंने पूछा था : माँ ! तू ही क्यों नहीं लिखती ?

माँ ने कहा था । ‘बेटा ! मुझे उनकी बहुत सी बात याद है । ऐसी मन
 पर लकीर सी खिंची धरी है । तू लिखेगा न ? आ काम बाँट लें । मैं बोलूँगी

तू 'लिखेगा । ठीक है न ?'

'हाँ !' मैंने सिर हिला कर कहा था । माँ ने मुझे चूम लिया था । मुझे
मैं पिता की धरोहर दी तो था ॥

और फिर माँ लिखाती, मैं लिखता ।

उस दिन शाम हो गई थी ।

माँ बड़ी सी नाद में घड़े से पानी ढाल रही थी ।

उसी समय द्वार पर मैं चिल्लाया : माँ ! देख तो, ले दादा आये हैं ।

माँ के हाथ से घड़ा छूट गया ।

मैंने देखा सिर टटायें हुए मुस्कराते हुए मेरे पिता ने कहा—पूटा कुंम
बल बलहि समाना !

माँ ने लाज से माया ढँक लिया और मुस्करा उठी । उस समय वह पूर्ण
तृप्त सी खड़ी रही ।

पिता अचकचा गये कहा : मैं आ गया हूँ लोई ।

'तुम गये ही कहाँ ये कंत । मुझे तो यह याद नहीं कि तुम्हारे बिना भी
मैं कभी यहाँ रही थी ।'

पिता की आँखों में आँसू आ गये, जैसे वे इतने दिन बाद आज पूर्ण हो
गये थे । उन्होंने गदगद् स्वर से कहा—

जिन पावनऊँ मुई+ बहु फिरे

धूमे देस विदेस

पिया मिलन जब होइया

आंगन भया विदेस ।

नीन गला पानी मिला

जगरि न जगरि के नीन

सुरत शब्द मेला भया
काल रहा गहिमौन !
कहना था सो कह दिया
अब कछु कहा न जाय,
एक रहा दूजा गया
दरिया लहर समाय ।

और वे दोनों एकटक देखते खड़े रहे । दोनों के नयनों से आँसू बह रहे थे । मैं समझा नहीं । मैंने पिता का हाथ पकड़ लिया और कहा : अम्मा ! देख दादा आये हैं ।

माँ चौंक उठी । उसने आँसू पोंछ लिये । पिता के चरण छुए और ऐसे हँस कर खड़ी हो गई जैसे वे कहीं बाहर से नहीं आये थे, सिर्फ बजार होकर आये थे ।

पिता बैठ गये । मैंने देखा वे बेसुध से थे ।

मैंने कहा : दादा कहाँ गए थे ।

पिता ने मेरा सिर चूम कर कहा : बेटा मैं राम ढूँढ़ने गया था ।

‘कौन राम दादा ! मिला । कहाँ तक गए थे ? कहाँ मिला ?’

पिता ने मुस्करा कर कहा—‘मिल गया बेटा । बलख तक गया, पर कहीं नहीं मिला । वह तो मैं घर ही छोड़ गया था !’

‘घर में ? कहाँ है दादा ।’

‘करघे में है बेटा । यही अन्न देता है न ? मेहनत करके खाना ही राम का र र है । और दूसरों की उससे सेवा करना ही उसका म म है । इसके अलावा कुछ नहीं है ।’

माँ पास आकर बैठ गई । कहा : कंत ! कमाल बहुत रोता था ।

‘भूँठी’, मैंने कहा—‘मैं रोता था कि तू रोती थी । तू ही तो कहती कि—’

‘छिः छिः बेटा । क्या कहता है ?’

मैं चुप हो गया तो दादा ने कहा : बता बेटा । कह न ? क्या कहती थी अम्मा !

मैंने माँ की ओर देखा । माँ मुस्करा रही थी । आँखों में मना कर रही

ने, मैंने देखा था, पर होठों की मुस्कान में साहज भी तो दे रही थी। मैं
कमरे की ओर देखा, कमी नौ की ओर। पिता ने देखा तो कहा :
मैंने तो देखा था। मगवान भी तो नौ ही है। यद भी इतना ही स्नेही है,
यद भी इतना ही पूर्ण है। लोरे ! उसे मैं बाहर दूँ देने गया था !

‘मैंने तो नौ कइती थी।’ मैंने कहा।

मैंने मुँह फेर लिया, लजा कर। मैंने कहा : ‘दया ! अम्मा कइती थी
तो कइ बहुत अच्छे आदमी हैं पर मुझे एक ही दुख लगता है कि वे इतने
अन्धारे होते हुए भी अपनी अचलित्व को भूल गए। अगर हम माया भी
हैं, तो उन्हें क्या कामों की तरह घर छोड़ जाना चाहिए था। लोन भोंद
हम में जीतना था तो एकान्त में जाकर क्या छोड़ना ! जहाँ भगवान की
रखत है वहाँ तो उसकी साधना करनी चाहिए।’

नित्य वृण नर अवाक् रहे। फिर कहा : तुने रखा है यद तप, क्यों !

‘मैंने तिवाना था।’

‘क्यों ?’

‘कइती थी अगर मैं मर गई तो पिता के मिलने पर बड़ी कइ बीबी।’

नित्य बैठ कर मों की ओर देखते रहे। उनके तेजी से क्या था यह तो
मैं नहीं जानता, पर मों शर्मा गई थी। पिता ने बड़ी दूर तक देखा था और
फिर उन्होंने धीरे से कहा था, ‘ठीक कहती है लोई। जो वस की तरह दूध
पानी अट्टन कर लेता है, बड़ी पार उतर पाता है। गाहेन का ही तो बीदार
खब बगद दिखाई दे रहा है। उनकी बताई मुनिगों में आपने मन के गैल की
छोड़ी की माया बना कर दूसरी पर भोपना पाप ही तो है। शाधा नर मधा
ही दलछवा है बंटा। लोई ठीक कहती है। पानी से ही दिम बनती है, दिम
ही गल कर पानी बनता है। जो होता है वही बनता है, कइने लायक कुछ
भी नहीं रहता बंटा।’

और वे बोल उठे—

गगन गरजि वरगै अगी वादन महि गंभीर ।

चहुँ दिसि दमकै दामिनी भीजै दास कबीर ॥

अब गुरु दिल में देखिया गावन को कछु नाहि
कविरा जब हम गावते तब जाना गुरु नाहि ।

और पिता ने कहा : लोई ! बहुत दिन पहले तूने कहा था न, तो मुझे अब मालूम हुआ है । मैं जब एक से लगा, तो सब एक होगया । सब मेरा हो गया, मैं सब का हो गया, मुझे आज कोई दूसरा दिखाई नहीं देता ।

माँ उठी । रोटी ले आई ।

मैंने कहा : माँ ! तू क्या खाएगी । रोटी तो यह तीन ही थीं ।

माँ ने मुझे फटकारते नयनों से देखा ।

परन्तु पिता के नयनों में फिर आँसू आ गए । कहा : लोई ! बैठ ! आज हम तीनों मिलकर खायेंगे । दूर-दूर तक भटकता रहा हूँ । आज प्रकाश मिल रहा है तो उसे पूर्ण अविनासी हो जाने दे । वह प्रेम और संसार में ही मनुष्य को मिलता है । वह रहस्य है और अगम है, सबके परे है, परन्तु उसका अंतिम सान्निध्य इस ममता और निष्कलंक प्रेम में ही है । वह भटकन जो इस प्रेम को बुरा कहती थी उसने मुझे संन्यासियों की तरह भीख माँगकर जंगल, वन, ग्राम, पहाड़ों पर ढोंगियों और अवृत्त छुटपटाती आत्माओं के साथ घुमाया । वही माया थी । वह अहं ही माया का मूल था । वह माया, घृणा का ही परोक्ष रूप थी । उसने सहज सत्य को ढँक लेना चाहा । मैं उस माया को छोड़ आया हूँ । मेरा साँई यहीं है लोई । वह माया ठगिनी नैना झमका कर रोक रही थी । उसने बड़े बड़े ज्ञानियों को डुलाया है, उसने हाथ की मुट्ठी में सार तत्त्व को बंद करवाके, त्रिभुवन में चक्कर लगवाये हैं । बड़े-बड़े महा-त्माओं को उस मन के भय ने कभी स्त्री, कभी बालक, कभी घर, जाने क्या क्या रूप धर कर डराया है । गोरख, मच्छेन्द्र, दत्तात्रेय, राम सब उसके चक्कर में फँस गए । साँई ने मेरी रक्षा कर ली है । लोई ! साँई ने मुझे बचा लिया । मेरे यहाँ तू थी । तूने मुझे बताया है—और पिता ने अत्यन्त व्याकुल परन्तु विभोर स्वर में कहा—

हरि से तू जनि-हेत कर

कर हरिजन से हेत

मात मुलुक हरि देत हैं
हरिजन हरि ही देत ।

माँ बैठ गई । पिता ने एक एक रोटी बाँट दी । मैंने कहा : लाओ दादा ।
तुम्हें मालूम है माँ मुझे तुम्हारा कौन सा गाना सुनाती थी ।
मा ने कहा : तू खाना है कि बात करता है ।
पिता ने कहा : क्या गाती थी बेटी ।
मैंने धीरे से कहा :

प्रीतम को पतिप्रां सिद्धू
जो कहें होय विदेस
तन में मन में नैन में
ताको कहा सँदेस ।

पिता ने मुना छो रोटी रख दी । झूमने लगे । कहा : लोई ! याद !
उठा बगूला प्रेम का तिनका उड़ा अकास
तिनका तिनका से मिला तिनका तिन के पास
और माँ ने धीरे से कहा : याद है । उस दिन क्या कहा था तुम्हने—
सौ योजन साजन बसे
मानौ हृदय मंमार,
फपट सनेही आणने
जानु समंदर पार ।
यह तत बह तत एक है
एक प्राण दुई गात,
अपने जिय से जानिये
मेरे जिय की बात ।

पिता ने कहा : लोई ! आत्र में चुक हो गया हूँ लोई । आत्र कोई फाँव
हो रही—

कविरा हम गुरु रस पिया बाकी रही न छाक,
पाका कलस कुम्हार का बहुरि न चढ़ली चाक ।
तब माँ के कहने से हम खाने लगे थे । एक-एक दी छो रोटी थी । सत्रम

हो गई। माँ ने और पिता ने पानी पिया। मेरा पेट तो वह मोटी रोटी खाकर भर गया। पर वे दोनों भूखे रह गये ?

माँ ने पूछा नहीं कि पिता कहाँ कहाँ गये थे। मुझे कौतूहल हो रहा था। मैंने मौका देखकर पूछा : दादा !

‘क्या है रे !’

‘तुमने क्या क्या देखा दादा !’

‘कुछ नहीं देखा वेटा। जो देखने लायक था वह तो घर में ही था। सब चलने चलने की कहते थे, मुझे अँदेसा तो होता था, कि जब साहब से ही परिचय नहीं है, तो कौनसी ठौर पहुँचेंगे, बाट बिचारी क्या कर सकती है अगर पथिक सुधार के नहीं चले। अपनी राह छोड़ कर कोई दूर दूर चलने लगे तो ? ऐसा कोई न मिला जो हमें उपदेश देता। ऐसा कोई न मिला जिससे मन लग कर रहता। सबको मैंने अपनी आग में ही जलते हुए देखा। जैसी कथनी हो वैसी ही करनी भी चाहिये कमाल !’

मैं समझा नहीं। माँ जरूर सुनती रही। उसने कहा : भूल क्यों नहीं जाते उस सबको।

पिता क्षण भर माँ की ओर देखते रहे। कहा : लोई मैं क्या करूँ। तेरा संग पाकर भी मैं न सुधरा।

संगत भई तो क्या भया हिरदा भया कठोर
नौ नेजा पानी चढ़े तऊ न भीजै कोर।
गुरु विचारा क्या कुरै शिष्यहि में हैं चूक
शब्द वाण बेधे नहीं, बाँस बजावै फूक।

माँ ने कहा : तुम सच नहीं मानोगे।

वह प्रसन्न थी। वह आनन्द तो मैं नहीं समझा था, पर आज तक वह चेहरा नहीं भूला हूँ। आज मुझे याद आने पर लगता है कि वह तो माता धरती थी, खूँदी गई, रौंदी गई, सूरज ने तपाया, पवन ने धूँ धूँ करके अंग अंग की चाम को छार छार कर दिया, पर जब बादल आया और बरसने लगा, तो उसने एक भी शब्द नहीं कहा कि तू कहाँ चला गया था। बादल बरसा रोम रोम

सिंचित कर गया । धरती हँस उठी । उसने फिर फूलों की झड़ी लगाई ।
और मैं क्या कहूँ—

आसमान का आसरा छोड़ प्यारे उलटि देखो घट अपना जी
तुम आप में आप तहकीक करो तुम छोड़ो मन की बत्पना जी
बिन देखे जो निज नाम जपे सो कहिए रेन का सपना जी
कबीर दीदार परगट देखा तब आप कौन का अपना जी ।

आरम्भ

शाम हो गई थी। विश्वनाथ के मन्दिर में घण्टे बजने लगे थे। घननन घननन का नाद गूँज रहा था। बाहर बने विशाल नंदी काले पत्थरों के कारण चमक रहे थे। मन्दिर के विशाल स्तम्भों पर अधरे की छायाएँ पड़ने लगी थीं। और दीपाधारों में लटकती दीपशिखाएँ जगमग जगमग कर रही थीं। असंख्य दर्शनी आते, घण्टों को बजाते और फिर भीतर चले जाते, शिव-लिंग का दर्शन करते और लौट आते। भीतर से कभी कभी समवेत वेदध्वनि उठती और तब गंधधूम और फूलों की सुगन्धि काँपने लगती।

पथ पर एक सौलह बरस का लड़का खड़ा था। वह डरता हुआ सा देख रहा था। हठात् वह आगे बढ़ आया। उसने कहा : काका !

‘कौन ?’ एक अधेड़ आदमी ने मुड़ कर कहा : ‘कबीर !’

‘हाँ काका, मैं ही हूँ !’

अरे तू यहाँ क्या कर रहा है !’

‘कुछ नहीं ! वैसे ही खड़ा था’

‘लेकिन यह वैसे ही खड़े होने की जगह तो नहीं। वह तो गनीमत है

आगे जाकर अपना आसन नहीं बसाया, वरना बुरे हाथ पड़ते ।’

‘क्यों ?’

‘जैसे तू जानता नहीं । तू बुलाहा, मैं बुलाहा । कौन नहीं जानता कि यहाँ के पुजारी कितने कट्टर हैं ! कोई देख लेता तो भावेला मच जाता । काशीराज तक खबर पहुँचती । वे सारे बुलाहों को आड़े हाथों लेते । और मेरी तो आफत ही थी । मैं ठहरा देवीलाल, उनके मनसबदारों का बुलाहा । मुझसे कहते : क्यों देवी ! तूने भी जोगियों के असर में सिर उड़ाया है ! क्या कहता मैं कबीर ! चल बेटा घर चल ।’

‘ठरते क्यों हो काका ?’ कबीर ने कहा—‘मैं क्या भीतर थोड़े ही जाता था । पर हमें ये इसी से तो नहीं जाने देते न कि हम नीच जात माने जाते हैं ? काका हम नीच जात क्यों हैं ?’

देवीलाल ने कहा : शश—‘धीरे बोल बेटे । तूने इनका घमण्ड नहीं देखा ।

‘घमण्ड !’ कबीर ने कहा ‘मैं देखता आया हूँ आज । दावत हो रही थी । भूँठन निक रही थी । बाहर भंगी बैठे थे और वहाँ ठाकुर ऐसे भूँठन फँकता था कि कुत्ते और भंगी के बच्चे साथ-साथ भपटते थे । कितना भयानक लगता था वह सब ! इतने बेरहम यह कैसे हो जाते हैं काका !’

काका देवीलाल ने कहा : ‘चल बाहर । रुके मत तू कबीर ! गरीब की दर जगह आफत है । जिस पर जात अगर नीच हो गई तो समझ ले सत्यानास हो गया । क्यों, तू क्यों मरता है ?’

‘मैं मरता नहीं काका । सोचता हूँ । वह तो बड़ा महन्त है न ?’

‘हाँ बेटा उसका बड़ा मान है ।’

‘मान है, पर काम तो उसके बड़े नीच हैं काका । सुबह कहारिन को छेड़ रहा था । वह रो रही थी ।’

‘कोई कुछ कह रहा था ?’

‘कुछ नहीं ।’

‘देख ले तू ही । अमी तीन दिन पहले की बात है । पंडों ने श्रीरत के जेवर उतार लिए और ल्हास गंगा में उतार दी । बिबमान रोता चिल्लाता

लौट गया। कोई सुनता है ?

‘काका ! वे पण्डित जी जो गङ्गा तीर पर कथापुराण सुनाते हैं, वे तो दया धरम की बात करते हैं ?’

‘क्या कहता है वह ?’

‘यही कि ब्राह्मण की पूजा करो अपना लोक परलोक बनाओ।’

‘सो तो ठीक कहता है वह। सब मानुस एक से तो नहीं होते कबीर।’

‘पर मुझे यह सुनकर अजीब सा लगता है। क्या सचमुच हम इन लोगों से कुछ नीचे हैं ?’

देवीलाल उत्तर नहीं दे सका। वह आगे चलता रहा। कबीर ने ही फिर कहा : जिसके संग दस बीस हो जाते हैं वही महन्त हो जाता है काका।

‘बड़ा बातूनी है तू रे !’

‘काका मैं तो बदला लूँगा।’

‘किससे ?’

‘उसी महन्त से !’

‘किस बात का ?’

‘काका, तमाम पुजारी यहाँ वहाँ जगह-जगह खूब पैसा लूटते हैं। यह मंदिर है ? छूआछूत तो ऐसी जबर्दस्त है कि देख कर मेरा दिल काँप जाता है। परंतु इनके कर्म तो इतने नीचे हैं कि कहा नहीं जाता। पाखण्ड, धृष्टा, अहंकार, और ईर्ष्या ही इनके भीतर भरी हुई है।’

‘भरी हों तो वे अपना फल आप पायेंगे कबीर। तुम्हें ओखली में सिर देने की जरूरत ही क्या है बेटा ? भगवान को ही सुख देना मंजूर होता तो वह नीचे कुल में हमें जनम ही क्यों देता ? और जब जीवन में नरक पाया ही है तब उसे चुपचाप भोग कर अगला जनम क्यों न ठीक बना लिया जाए ?’

जुलाहों की बस्ती आने लगी। देवीलाल चला गया। कबीर खड़ा रहा। वह अभी घर जाना नहीं चाहता था। अभी उसके भीतर तरह-तरह के विचार उठ रहे थे। जब वह घर पहुँचा तब आधी रात थी।

कबीर धीरे से दट्टी हटा कर भीतर घुसा ।

‘कीन है ?’ नीमा ने बिस्तर में पड़े-पड़े पूछा ।

‘मैं हूँ अम्मा !’

‘कहाँ चला गया था बेटा ?’ बृद्धा ने खोंसते हुए कहा । ‘तेरा बाप जब से चला गया तब से मैं ही तो हूँ । क्या तुझे मेरी याद नहीं आती ?’

‘अम्मा !’ कबीर ने उसके पास बैठकर कहा : ‘कैसी बात करती है ! मैं गया ही कहाँ था ?’

और उसकी आँखों में बृद्ध नीरु का चित्र लिख गया । वही तो उसका पिता था, पालने वाला था । माँ ने ममता में कितना मर्मोत्तक आघात किया था ।

नीमा खोंसने लगी । खोंसते खोंसते उसकी आँखों में पानी आ गया ।

कबीर को लगा खांसती माँ थी, पर कंदा उसकी अपनी ग्रीवा में श्रटक रहा था । उसने खाट पर बैठ कर माँ को सहारा दिया । पानी पिलाया । कुछ बेर बाद जब नीमा सुस्तियर हुई तो उसने कहा : बेटा !

‘क्या है माँ !’

‘जानता है मैं बूढ़ी हूँ ।’

‘नहीं, मुझे यह भयानक बातें नहीं सुननी है ।’

माँ हँसी । वह दुलार की उमड़ती धारा थी । कहा : बेटा ! अब मैं शिजूं-गी भी तो कितने दिन, आखिर तुझे कोई तो सहारा चाहिये । रोटी कीन करेगा तेरी ?

‘मैं खुद कर लूँगा अम्मा । तू फिर न कर ।’

‘अच्छा सुनो ! मैं अब बन्द कर दूँगी, तो दो दिन में तुझे आटे दाल का माव मासुम पड़ जायेगा ।’

बृद्धा हँसी । कबीर भी । बृद्धा ने कहा : बेटा ! तू माँ को चाहता है,

उसके बारे में कुछ भी बुरा नहीं सोचना चाहता न ? पर एक बात याद रख ले जैसे एक दिन तेरा बाप चला गया, वैसे ही एक दिन तेरी यह माँ भी चली जायेगी और बाप की कमी को तो वेटा मैंने खलने न दिया, पर मेरी कमी को पूरा करने के लिये क्या तुझे किसी नये सहारे की जरूरत नहीं है ?

कबीर नहीं बोला । लगता था वह सोच रहा था । मृत्यु आयेगी । वह अवश्य आती है ।

और जिस क्षण मनुष्य की जीवन की ममता और शक्ति टूटकर मृत्यु के बारे में सोचने लगती है उसी क्षण उसमें एक नयी तन्मयता जाग्रत हो उठती है, जो जीवन का सम्मान करना जानती है ।

मां ने फिर कहा : वेटा ! इस दुनिया में कोई किसी का सहारा नहीं होता, पर घर वाले ही उन सबके मुकाबले में अपने होते हैं । मरे की मिट्टी तो अपना धर्म संभालता है, पर जीती मिट्टी के लिये भी तो करने वाला कोई होना चाहिये । तू बाहर से आता है, उस वक्त कोई दो बात पूछने को न होगा, तो तुझे यह घर काटने को दौड़ने लगेगा कबीर ! आदमी चाहता है कि कोई उसके सुख दुख में सवाल जवाब करे। तू रुठे कोई मनाये । कोई और मान करे, तो तू उसे समझाये। वेटा, आपस की प्रीति से ही यह दुनिया हल्की होकर चलती है ।

‘तू यही बातें करती रहेगी या मुझे कुछ खाने को भी देगी?’ कबीरने कहा ।

माँ हँसी और फिर खॉसी ने घेर लिया ।

कबीर ने देखा, वह कंकाल खॉसी की चपेट में थरा उठता था । जैसे साक्षात् मृत्यु ने बुढ़ापे के जाल में फँसा लिया था और बार बार झकझोर उठता था । जीवन क्या सचमुच ऐसी ही दीर्घ यंत्रणा थी । कबीर को लगा वहाँ माँ नहीं थी, एक प्राणी अपने जीवन के लिये मृत्यु से संघर्ष कर रहा था । वह चित्र भीतर उतर गया । जब पिता मरे थे, उसका चित्र उसे याद नहीं है। तब वह सात बरस का था । तब से अपमान में वह जीती रही है । उसने चक्की पीसी है, ताना बुनकर बाना डालना उसी ने कबीर को सिखाया है । उसका ही सिखाया कबीर वस्त्रों को लेजा लेजा कर बाज़ार में बेचता रहा है । जो कुछ आमदनी होती रही है, उसी से दोनों किसी तरह पेट भरते रहे

हैं। कमी कमी जब किसान आते हैं तब काशी के बुलाहों में जान में जान आती है। घर्ना सिपाही आते हैं तो मन चाहे मोल उठा ले जाते हैं। उनकी बात सुनने वाला कोई नहीं। किसान लगान देते नहीं थकता, चमार बेगार देता है। जगह जगह बघन है, अछूत हैं, और कबीर बुलाहा बैठा बैठा देखता है कि ऊँची जात के लोग, मुसलमान सिपाही, सब, सब ही बुलाहों को दबाते हैं और ये दबते हैं। लेकिन क्यों ?

कबीर मां की पीठ सहलाने लगा। धूढ़ी कुछ देर में ठीक हुई और उसने धीमे से कहा : 'रोटी यहाँ हैंडिया में कपड़े में लिपटी रखी है। ले ले। मुभत्ते उठा नहीं जाता। हे भगवान ! बुला क्यों नहीं लेता ?'

वह फिर कहने लगी—'बेटा ! मेरी मान जा धूढ़ी की असीस ले। छोटी सी बहू ले आ फिर देख तेरे श्रॉगन में कैसा उजासा हो जायेगा।'

'अच्छी बात है मां', कबीर ने कहा : 'पहले रोटी खालूँ फिर विचार करूँगा।'

'तेरी मर्जी।' बुढ़िया ने कुछ खीझ कर कहा, जैसे इतनी मेहनत उसने व्यर्थ ही की थी, जैसे वह तो रस्सी सरकाती गई, पर घड़ा पानी में नहीं, सूखे कुए की तह में जाकर टकराया। और वह फिर लेट गई।

कबीर रोटी लेकर बाहर हल्की चोंदनी में आ गया। और खाने लगा। उस समय पीछे किसी की हल्की पगचाप सुनाई दी।

'कौन ? लोई ?' कबीर ने कहा—'इस समय ? जानती है कौनसा पहर है ?'

यह पतली दुबली पन्द्रह साल की लड़की अपने मैले लैंहगे को समेट कर बैठ गई और कहा : 'मुभत्ते पूछते हो ? तुम्हें क्या पहर घड़ी की चिंता नहीं ? मैं कबसे बैठी तुम्हारी राह देख रही हूँ।'

'क्यों ?' कबीर ने कहा—'सोई नहीं ? घर के लोग कहाँ गये ?'

'सो गये। सबकी अकल मेरी तरह खराब तो नहीं।'

कबीर ने हाथ रोटी से अन्नग करके कहा—'तू तो कमी ऐसा नहीं कहती थी लोई। आज कैसे कहती है ?'

'कहती हूँ यों कि मेरी बनाई चटनी पत्ते पर रस्सी सूख गई और मैं बैठी रही कि कब तुम आओ, कब खिलारूँ। जानती हूँ मां बीमार है। तुम्हें तो

कोई फिकर नहीं। बेचारी दिन रात खटती है। मुझे तो दर्द होता है।'।

कह कर उसने पत्ता हाथ से निकाल कर सामने रख दिया। बोली :
चख के देखो, कितनी अच्छी बनी है !

कबीर ने खाकर कहा : 'बहुत स्वाद की बनी है लोई। माँ के बाद मुझे
तेरे ही हाथ का बनाया अच्छा लगता है।'।

लोई लजा गई। कहा : 'क्या बकते हो। आधी रात के बखत कोई
ऐसे कहता होगा। कोई सुनेगा तो क्या कहेगा ?'

कबीर ने टांका : 'अरे मैंने ऐसा क्या कहा है रो जो इतना घुड़कती है ?
अभी तो तुझे माँ के लिए दर्द आ रहा था न ?'

'अच्छा तुम्हें नहीं आता ?' लोई ने पूछा।

'क्यों नहीं आता लोई। मैं क्या बैठा रहता हूँ ? तू बत। मैं दिन रात
बुनता रहता हूँ, तब कहीं जाकर पेट भरता है ! तू क्या जुलाहिन नहीं है, तू
क्या हालत नहीं जानती ?'

'मैं सब जातनी हूँ पर रोती नहीं तुम्हारी तरह। तुम्हें तो रट लग जाती
है तो बस लग ही जाती है।'।

माँ ने पुकारा : वेटा कबीर !

'हाँ अम्मा आया।' कबीर ने उत्तर दिया।

'क्या कर रहा है वेटा वहाँ ! अरे ओस गिर रही है। वहाँ तेरे पास
कौन है वेटा ?'

'माँ लो'.....

'छिः' लोई ने मुँह पर हाथ रख दिया—'चिल्लाते क्यों हो। ऐसे
बदनाम क्यों कराते हो। नहीं समझते तो चुप रहो।'।

कबीर ने मुस्कराकर कहा : आया अम्मा लो। अभी अभी आया।

लोई ने कहा : 'मेरा नाम यों चिल्लाते हो, पहले इसका हक पात
कबीर। ऐसे ही आधी रात को न अलख जगाने दूँगी मेरे नाम की।'।

'अच्छी बात है लोई।' कबीर ने कहा : 'तेरा दादा न मानेगा तो ?'

'क्यों न मानेगा ? तू क्या जुलाहा नहीं है ?'

'हूँ तो।'।

'फिर आदमी कि है जानवर है !'

'आदमी सा ही लगता हूँ, पर यह तो तेरे माई बंधों पर है, ये तो उसे ही आदमी मानेंगे जो ठन जैसे होंगे ।'

'क्या मतलब ?' लोई ने खींक कर कहा—'बे तुम्हारी मत में मानुस नहीं है !'

कबीर ने कहा : जा परमेसुरी ! ताना खँचती है तो आरत करती है ।

'कैसे चली जाऊँगी । आधी रात तक क्या मैं चटनी लिये बैठी थी !'

'तो !'

'तुम्हें क्या नहीं लाज नहीं, मुझसे कहलाते हो ।'

'आगिर बात क्या हुई कह न !'

'दादा मेरा ब्याह तय कर रहे हैं । तुम क्यों नहीं अम्मा से कहलवाते ?'

'क्या कहलया हूँ ?' कबीर ने पूछा—'यही टीक रहेगा कि हमारे घर में आदमी कम है । एक चटनी पीसने वाली चाहिये । टीक रहेगा !'

लोई मुस्कराई । कहा : 'मैं तुम्हें इतनी लड़ाका दिखती हूँ, क्यों ! मेरा क्या है । काली सली खाओगे आप बुद्धि ठिकाने लग जायेगी ! अच्छा मैं जाती हूँ ।'

'ठहर लोई । दिन भर के बाद अब तो मिली है ।'

'मैं तो पहले भी मिल सकती थी । पर तुम ही चले गये थे ।'

'बढ़ा गया था जानती है !'

'नहीं ।'

'मैं मरपट गया था ।'

'दाय राम !' लोई ने कहा—'मैं भी तो पूछूँ क्यों ?'

लौट रहा था लोई । रास्ते में मैंने मुड़ां बाते देखा । कोई बूढ़ा था । बड़ी भालर वालर बजा कर ले चारदे थे । मैंने सोचा क्या बात है । जाकर देखनी तो चाहिये, सो चला गया ।'

लोई हरी सी बैठी रही ।

'तू बोलती क्यों नहीं ?' कबीर ने पूछा ।

'मैं अब बोलूँ भी क्या !'

‘क्यों ?’

‘तुम तो जोगी हो रहे हो !’

कबीर उसके मुख को एकटक देखता रहा । लोई ने धीरे से कहा—ऐसे न देखो मुझे डर लगता है ।

‘क्यों ?’ कबीर चौंक उठा ।

‘इस तरह देखते हो मुझे कुछ पराया समझते हो । अविश्वास से कुछ जो दूँदते से लगते हो, तो मुझे लगता है कि मैं तुमसे बहुत दूर हूँ । यह मुझे अच्छा नहीं लगता ।’

कबीर ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—‘लोई ! मैं तुमसे दूर नहीं हूँ । मैं अपने आपसे जब दूर होने लगता हूँ तब मुझे कुछ डर सा लगने लगता है ।’

‘अपने आपसे कौन दूर होता है भला ।’

‘मैं होता हूँ लोई । राह पर चलते हुये लगने लगता है कि देह जली जा रही है और इस शकल सूरत का आदमी जो कबीर कबीर कहलाता है, वह असल में कोई और ही है, जिसे जानना चाहिये । और मरघट में मुझे वहाँ जान पहँचान सी लगी । मुझे लगा मैंने वहाँ इतना दुख देखा, इतना दुख देखा कि मुझे जीवन में एक विश्वास सा हो गया है ।’

‘विश्वास !’ लोई ने धीरे से कहा—‘जो इसे खो देते हैं वे कभी चैन नहीं पाते, ऐसा दादा कहते थे ।’

‘तू समझती है लोई ।’ कबीर ने आश्चर्य से पूछा !

‘नहीं ।’ लोई ने कहा —‘कुछ नहीं समझती, पर तुम्हें समझती हूँ ।’

दोनों निस्तब्ध से एक दूसरे को देखते रहे । लोई ने धीरे से हाथ अलग कर लिया । कबीर ने कहा : कहाँ जाती है लोई ?

‘अब मैं तब ही आऊँगी कबीर ! जब तुम मुझे दिन दहाड़े हजार जुलाहों के बीच सामने से बाजे बजवा कर लाओगे । अब चटनी बंद ।

तभी मां ने पुकारा : अरे आया नहीं वेटा....

‘आया अम्मां....’ कबीर ने कहा, और लोई पाँव दबाती हुई चली गई....‘चुपचाप....’

होली आ गई थी। काशी की सड़कों पर आज धुंध सी मन रही थी।
पूल के अंबार उठ रहे थे और भोंग और शराब के नशे में चूर, अजीब और
गुलाल उड़ाने मुंड के मुंड लोग टोलियों बना कर गाते, दोल बजाते, नाचते
बा रहे थे। बच्चे रंग फेंकते। औरतें छतों पर बैठी थी और घूंघट खींचे रंग
हालती थीं, नीचे सड़कों पर मर्द नाचते थे। चारों ओर हुड़दंग मच रहा था।

नीमा मुबह से ही बैठी थी। उसने पुकारा : घेठा कबीर !

'क्या है अम्मा !' कबीर ने पास आकर कहा।

'घेठा ! तू नहीं गया कहीं ?' माँ ने कहा।

'कहाँ जाऊँ अम्मा !' कबीर ने कहा : 'सब लोग तो भोंग पीकर झूम
रहे हैं। मुझे नशा करना अच्छा नहीं लगता।'

बाव तोर सी लगी।

कुछ देर बाद कबीर लिसक चला।

उदास सी छत की मुँदेर के पीछे लोई बैठी सी रही थी।

कबीर स्वभ्य सा देखता रहा। फिर धीरे से कहा : लोई !

उसने मुड़कर देखा। कहा कुछ नहीं। फिर टोरे को मुँह में गप्पा डाल
उसका छोर बंदने लगी।

कबीर ने फिर कहा : लोई !

'क्या है !'

'तू क्या सोच रही है !'

'कुछ नहीं।'

उसका मान आज साधारण नहीं था। कबीर उसके पास बैठ गया। इधर
छत सोच में पड़ गया था। उसके माथे पर बल से पड़ गये थे। उसका मान
देख कर लोई को चिंता होने लगी। उसने उसकी ओर न देखकर कहा :
क्या सोच रहे हो ?

‘कुछ नहीं,’ कबीर ने कहा ।

लोई मुस्कराई । कहा : ‘तुम बड़े चालाक हो, मैं जानती हूँ ।’

‘क्यों लोई ?’ कबीर ने कहा : ‘तूने मुझे सीधे जवाब दिया था ?’

लोई की मुस्कान फिर ढह गई । कबीर ने देखा । हाथ पकड़ कर कहा :

‘तुझे कुछ दुख है लोई ?’

‘दुख !’ लोई ने कहा : ‘क्यों होने लगा मुझे ?’

और उसने तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर कहा : ‘तू समझता है मैं कुछ जानती नहीं । क्यों ?’

उस ‘तू’ में विक्षोभ था, क्रोध था, परन्तु हृदय के स्वत्वानुभव की अनुभूति थी । ‘तू’ सुनकर कबीर चौंका नहीं । भरे-भरे नेत्रों से देखता रहा । फिर पूछा : क्या जानती है ?

‘मैं पूछती हूँ तू किस लिये कमाता है ?’

‘पेट के लिये लोई ।’

‘किसके ?’

‘अपने और मां के ।’

‘बस ?’

‘और तो अभी घर में कोई नहीं ।’

‘और जो आयेगा उसके लिये तेरे पास क्या है ?’

‘मेरा दिया ।’

लोई ने सिर हिला कर कहा : ‘अरे मैं पहले ही तेरी बातें जानती हूँ । यों नहीं बहलूँगी । कुछ मेरा बाप भी तो कहेगा । विरादरी क्या कहेगी ? तू कल अपने पैसे उस लंगड़े और अंधे सूरा को दे आया था, परसों मैंने देखा था तूने चार कौड़ियां एक साधू को दे दी थीं । तू बड़ा दाता है न ! ला मेरे लिये क्या लाया है ?’

‘तेरे लिये ?’ कबीर ने कहा—‘मैं तेरे लिये इन सबसे अच्छी चीज लाया हूँ । देख ! यह है । बोलती मिट्टी ।’

‘कौन ?’

‘मैं हूँ, जो !’

लोई हतमम नहीं हुई। उसने कहा : 'भिक है छोड़ो, भी बोल कर भी मिट्टी ही बना रहा, मानुष न हुआ।'

'लोई !!!' कबीर के मुख से दृढ़ता निकला। आज उसमें भी भिन्नता दोह गई। 'लोई !!!' उसने फिर कहा। मानो फिर उपाहा गला धँस गया और कुछ कह नहीं सका।

लोई ने कहा : 'आज तू मुझसे होली खेलने आया है न ?'

'हाँ लोई ! पर मेरा मन इस मुर में रमता नहीं !'

'क्यों ?'

'यह सब मुझे चलता हुआ दिखाई देता है। देखता हूँ संसार में घोर अन्धकार हो रहा है। यह करने वाले अंध को जलाते हैं, जोगी जीवन बिताते हैं तो बगद-बगद मरते फिरते हैं। ब्राह्मणों का अहंकार नीन जाति नीन जाति कहकर हमारा अपमान करता है। हम पुगी हैं तो क्या आदमी नहीं है लोई। मुसलमान रोज लोगों को मटकाते हैं, गरीब लोग हाहाकार कर रहे हैं। चारों तरफ मजबूरियाँ लड़ी हैं। मैं देखता हूँ तो एक गुलगन सी ठह लड़ी होती है। तुम्हें कोई चिंता नहीं होती ?'

'किसकी ?' लोई ने पूछा।

'यह जो दुनियाँ में इतनी बेचैनी फैली हुई है ?'

लोई मुस्कराई। कहा : 'मुझे उस सबकी बेचैनी नहीं होती, केवल एक बेचैनी होती है।

कबीर ने मरन वाचक दृष्टि से देखा।

लोई ने कहा : 'केवल यही कि तू बेचैन रहता है। पुगी पुलादे क्या और नहीं है वो तू इतना व्याकुल है। मैं पूछ सकती हूँ 'काजी जी क्यों पदर के अंदरे से इतने दुबले हैं ?'

'तू छी है,' कबीर ने कहा—'माया तेरे घट घट में है।'

लोई ने कहा : 'साधुओं ने तुम्हें बोरा दिया है कबीरे। अगर छी माया है तो पुरुष क्या है ? सब मटक रहे हैं। सिद्धों की सी अटपटी न नाथों कापालिकों की तरह डराने की कोशिश कर। बं

जादूगरनियों की बात सुनती आई हूँ। वह सब भूँठ होगा। लोग चाहते हैं कि कुछ कर दिखायें, पर राह नहीं मिलती। गरीब का क्या? तू पागल है। ऐसी बात करके तू मेरा अपमान करता है, उसे तू जानता नहीं, खैर, मैं उसे पी जाऊँगी, पर मुझे यों न सता कि जाकर मरघट में बैठा ल्हासों को जलता देखा करे। अरे यहाँ इतने जीते हुए हाथ पाँव चलाते हैं, वे तुझे आश्चर्य से नहीं भरते? तू मिट्टी को जलते देख के डरता है, मिट्टी को हंसते रोते देख कर तुझे अच्छा नहीं लगता?

‘यह एक मेला है लोई! लगता है, उठ जाता है। जो इसी में भूला रहता है, वह क्या जान सकता है? इसी को सब कुछ समझ लेने से ही तो आगे चल कर इतना दुख होता है।’

‘दुख!’ लोई ने कहा—‘तू जानता है दुख क्या है?’

कबीर ने धीमे से कहा—‘इस दुनियाँ की रीत उल्टी है लोई। यह रंगी को नारंगी और माल को खोया कहती है। जो चलती है उसे गाड़ी कहती है, बता इस सबको देख मैं अगर रुँ आसा हो जाता हूँ तो क्या बुरा करता हूँ।’

‘बात के फेर में पड़ा तू अपने को भूल रहा है।’

‘नहीं लोई।’ कबीर ने कहा : ‘सुबह सुबह जब तू चक्की चलाती है तब मेरा दिल काँप उठता है। दो पाटों के बीच में आकर कोई नहीं बचता।’

‘जगत का नाता तोड़ कर ही क्या चैन मिल जाता है कबीर? माना कि मैं माया हूँ, पर मुझे किसने बनाया?’

‘भगवान ने!’

‘और तुझे किसने बनाया?’

‘उसी ने।’

‘तो मैं तू जब एक से हूँ, तो मुझसे अभिमान करने का हक रखता है?’

‘नहीं।’

‘फिर मुझे क्यों जलाता है?’

लोई की आँखों में आँसू आ गये। उसने कहा : ‘तू उद्दास रहता है। खोया खोया रहता है। आखिर क्यों? सच तुझे मन में कभी कुछ कुछ सा नहीं होता?’

‘होता है लोई ।’

‘तो फिर तू दूर दूर क्यों रहता है कबीर !’

कबीर ने लोई के आँखें पोंछ दिये । लोई गर्व से नीचे देखने लगी ।
कबीर ने कहा : ‘अब भी तुझे दुख है ?’

‘नहीं ।’ लोई ने कहा — ‘तू कहता है मैं माया हूँ । मुझे माया ही कह,
पर जो माया भगवान ने बनाई है, वह क्या इसी लिये अच्छी नहीं है कि वह
बाँधे रखती है, उसी भगवान की सौगात है । बाबरे ! मैं न होऊँ तो यह
संसार की माया बदेगी कैसे ! कैसे सदा सदा, युग युग तक आदमी भगवान
की चिंता करेगा, कैसे उसका नाम इस धरती पर गूँबा करेगा, कबीर ।’

‘क्या है लोई ! तू मुझसे क्या क्या कह जातो है । मैं इतना सब सुन कर
आता हूँ । वह सब क्षण भर में तेरे सामने लख सा जाता है । तू माया कहाँ
है लोई ! तुझे देखता हूँ तो मुझे बंधन नहीं लगता, सहारा सा मिलता है ।’

‘मैं नहीं समझती कि यह क्या है । यही तो वह लगन है जो मुझे तेरा
बनाये रखती है । मैं तेरे पास रहूँ तो क्या तुझे पाप लग जायेगा !’

‘नहीं लोई । कभी नहीं । तू इतनी पवित्र है ।’

लोई शर्मा गई । कहा : तू है संन्यासी ही । यह न भूल कि मैं तेरी कौन
हूँ । हूँ कुछ !’

कबीर उसे मुस्कराता हुआ मरी मरी आँखों से रहस्य मरी मुस्कान लिये
देखता रहा । देखता रहा । लोई ने माथे पर घूँघट खींच कर मुस्करा कर
कहा : ‘सब कह । फिर तो मेरा खून नहीं जलायेगा !’

‘नहीं ।’ कबीर ने कहा ।

‘तो जा सबके संग होली खेल । मैंने तेरे लिये गुंभिया छिपाकर रखी है
तू रंग में भीग कर आ, मैं तुझे अपने हाथ से खिलाऊंगी ।’

‘अब तो मैं रंग गया लोई ।’

‘कैसे !’

‘तेरे रंग में ।’

‘यही नहीं चाहती मैं ।’ लोई ने कहा — ‘यही मुझे डराता है । मैं दुनिया
में सब कुछ नहीं हूँ कबीर । जैसे तेरे लिये बहुत कुछ है, वैसे ही हम सब ~

मैं भी हूँ। ये जो घर छोड़ कर भागते हैं, वे एक आँख से दुनिया को देखते हैं। अगर वे मन का तोल बराबर रखें तो लोगों का लाभ हो, नहीं तो हों और ना के पलड़े हमेशा होड़ करते रहते हैं। एक तरफ मरघट है, योग है, त्याग है, वन है, संन्यास है, दूसरी तरफ दुनिया है, लोगों का लाभ है, मदद है, पाप का पर्दाफाश करना है, दुख उठा कर भागना नहीं, यहीं रह कर सचाई के लिए लड़ना है। मैं अकेली उस सबको नहीं भेल सकूंगी। दो पांवों पर बोझ संभाल, एक पर न चल। गिर जायेगा। मुझे चाहते हुए तू दुनिया को न भूल, उससे धिन न कर, मुझे अंधा होकर प्यार न कर। मैं तो तेरी साथिन हूँ। जो तेरे लिये अच्छा है, सो मेरे लिये अच्छा है। तू कमा के गेहूँ चना जौ ला। मैं पीस के रोटी करूंगी। तू खा और मुझे खिला। अपना काम तू कर, अपना काम मैं करूंगी। मैं ताना डालूंगी, तू बाना डाल। तू मेरे पास आये तो आँख खोल कर आ। ऐसा न कर कि तुझे यह लगे कि तू सुपने में मिल रहा है! तू दूर चला जाता है, तब भी मुझे पास ही लगता है। आँखों का अन्तर भले ही पड़ जाये, पर प्राण तेरे ही पास रहते हैं।'

लोई ने कबीर का हाथ पकड़ लिया और कहा : 'मैं समझती नहीं, गलत तो नहीं कहती?'

कबीर चौंक उठा। बोला : 'जो तू कहती है वह मुझे अच्छा लगता है।

'यह मैं नहीं चाहती। तू अच्छा लगता है, तो सुनता है, पहले से मन में बना लेता है, तो अच्छा लगता है, और अगर पहले से मन में बना लेगा कि अच्छा नहीं लगेगा, तो उस दिन तुझे मेरी बात भी अच्छी न लगेगी। मैं यह नहीं चाहती। मैं कहूँ तो सुन। फिर तू कह, मैं सुनूँ। जो तुझे ठीक लगे उसे तू बता मुझे ठीक न लगे वह मैं कहूँ। हम तुम अलग अलग नहीं कबीर, हम तुम संगी साथी हैं।'

और कबीर ने वह एक नवीन मार्ग देखा। वह एक समन्वय था, जो किसी प्रकार की भी दासता को अस्वीकृत करता था। वह उत्तरदायित्व को समझ करके भेलना था, जहाँ व्यक्ति की पूर्णता थी, किंतु अपने को विनष्ट करने वाली अंध पराजय नहीं थी। उसने कहा 'लोई!'

‘क्या है ?’

‘सब रसायन में किया
 प्रेम समान न कोय ।
 रति एक तन में संचरे
 सब तन कंचन होय ।
 जोई मिले सो प्रीति में
 और मिले सब कोय
 मन सो मनसा ना मिले
 देह मिले का होय ।

लोई के नेत्रों में आनन्द के दीपक जग उठे मारों पुतलियों के अंधकार में जीवन्त आलोक मुलग उठा, जैसे दूकानी लदरों के बीच किमी दीपस्तंभ पर से किरणें दवा को काटती अभकार को फाड़े दे रही थीं । कबीर ने फिर कहा—

जल में बसे कमोदिनी
 चंदा बसै अकारा
 जो है जाको भावता
 सो ताही के पास ।
 नैनों की करि कोठरी
 पुतली पैलग विछाय
 पलकों की चिक डारि कै
 पिय को लिया रिभाय ।

लोई ने आनन्द से नेत्र मूंद लिये । कबीर ने उसके बालों पर हाथ फेरते हुए कहा—

अग्नि आँच सहना सुगम
 सुगम खड़ग की धार
 नेह निभावन एक रन
 महा कठिन व्योहार ।
 जा घट प्रेम न संचरे

सो घट जान मसान,
जैसे खाल लुहार की
साँस लेत बिनु प्रान ।

लोई ने उसके वक्ष पर सिर धर दिया और विभोर हो गई ।

कबीर देखता रहा ।

उसने कहा : लोई ।

वह चौंक उठी । उसने आँखें खोलीं । उन नयनों में कितना जीवन था ।

कबीर को लगा जैसे अमृत का समुद्र लहरा रहा था । मन ने कहा । कौन कहता है स्त्री माया है, पाप है । वह जननी है, वह आद्या सृष्टि है । वही पूर्ण है । पुरुष उसका अंश है । स्वयं अनन्त भगवान भी स्त्री हीन नहीं है । इसे छोड़कर बन जाने में क्या लाभ है ! वे जो भटक रहे हैं उन्हें यह केवल कामिनी ही दिखाई देती है । वह पुरुष की विकृत वासना ही है जो इसे देख कर केवल कामिनी देखता है ! वह इसकी आत्मा के पूर्णत्व को नहीं देखता ।

लोई ने कहा : 'मैं यहाँ नहीं रहूँगी ।'

'कहाँ जायेगी लोई ?' कबीर ने चौंककर पूछा ।

'तू मुझे ले चले । देख तेरी माँ भी बूढ़ी हो गई है ।'

कबीर क्षण भर सोचता रहा ।

'क्या सोचता है ! धन की चिंता करता है ? जैसे तू रहता है, मैं रहूँगी । यहाँ क्या फरक है । धन तो आता जाता है कबीर । मन का विश्वास मुझे दे दे, फिर मुझे कुछ भी नहीं चाहिए ।

कबीर ने कहा : नहीं लोई ।

पो फाटी पगरा भया

जागे जीवा जून

सब काहू को देत है

चोंच समाता चून ।

मन के हारे हार है

मन के जीते जीत

कह कबीर पिऊ पाइए

मनही की परतीत

लोई आनन्द से उठ खड़ी हुई और फिर इससे पहले कि कबीर उठे उसने पास रखे मटके को उठा कर कबीर पर उड़ेल दिया । कबीर भीग गया । कबीर ने उसको पकड़ लिया और कहा : अब तुझ पर कौन सा रंग डालूँ !

लोई ने मुस्करा कर कहा : मैं तो उसी दिन से रंग गई हूँ जिस दिन तुझे देखा था.....

मरजीवे* को तो देखो.....

जिंदगी पुकारती है : कमाल रुक कर देख !!

और मैं बहुत दिन बाद मुड़ कर देख रहा हूँ ।

लेकिन जो तब भी था, अब भी है, आगे भी रहेगा.....

वह नये मानव का विद्रोह था !

स्वतन्त्रता** बुद्धि की पूर्ण स्वाधीनता केलिये मनुष्य ने पुकार उठाई थी***

पिता कहा करते थे—

काल करै सो आज कर

आज करै सो अब्व

पल में परलै होइगी

बहुरि करैगा कब्य ।

कर्त्तव्य के लिये वे देरी नहीं सह सकते थे ।

श्रीर सचमुच मैं कुछ न कर सका । प्रलय हो ही गई ।

कबीर को चेलों ने हुचा ही दिया, क्योंकि मट बना, धन आया, श्रीर मोह ने सत्य को टंक लिया ।

पर यदि मैं कुछ नहीं कर सकता तो क्या यह भी न कहूँ कि मैं वापस वह ही नहीं था, जिसे शून्य शून्य कहकर सब खताने रहे । ये उर्गे मशरूफ कह देते हैं पर उसकी उन बातों को नहीं कहते, जो उसका अपना गिनत था । मैंने तो उपसंहार से आरम्भ की मलक देखी, पर मैं यह फिर कहूँगा, क्योंकि मेरा बाप दीन बुलाहा था । उसने पहले ब्राह्मण को पूज्य गमका था । फिर उसका विकास हुआ । वह जोगियों से प्रभावित हुआ । फिर जब वह जगा तो उसके भीतर की शक्ति जागी । उसने इन सब बंधनों को तोड़ दिया ।

वह संस्कृति का पुनर्जागरण था, दीन जनता का पहला स्पष्ट भ्रमण निर्गाह था । पर उसे लोगों ने टबा दिया है ।

क्या वह दब सकेगा ।

यह तो मेहनत को कमाई पर पतन वापस आगामी था... दर्शन, ज्ञान, मो, बुद्धि, धनहीन, पण्डित आगाहिन...

मैं बताऊँगा कि वह पण पण वा बड़ा श्रीर फिर दीपक के भी दीपक बतलाता जाता गया ।

फिर ब्राह्मण, जागी, दूधक, सबने श्रीर के गद्दे लपेटा दिया । श्रीर कबीर के चेलों ने उनकी नकल की, कबीर के पिता को दमदम दमके धार्मिक ज्ञान के शून्यनाट में टंक दिया, जब वह जागियों के सामने था...

मैं तो वह दिखाऊँगा की लीग आप भूल नहीं है ।

निता दूनों की ध्वनि किरा की शक्ति ने दुर्गा हो जाते थे । उन्होंने एक दिन व्योमल होकर कहा था—

आनी कह मेरी मुँह

मुँह निता दूने श्रीर

मेर दमदम जन बड़ा

गता निता न कीय ।

देस देस हम वागिया
 ग्राम ग्राम की खोरि
 ऐसा जियरा ना मिला
 जो ले फटक पछोरि ।
 भक्ति भक्ति सब कोई कहै
 भक्ति न आई काज
 जहँ को किया भरोसवा
 तहँते आई गाज
 सब काहू का लीजिये
 साँचा शब्द निहार ॥
 पच्छपात ना कीजिये
 कहै कबीर विचार ।

मैंने कहा था : दादा ! फिर धर्म क्या परम्परा से पिता से पुत्र को नहीं मिलेगा ?

कबीर ने कहा था : नहीं बेटा ! धर्म कोई रूढ़ि तो नहीं । मनुष्य का कल्याण ही धर्म है । अपना ही विश्वास अपना ही बंधन बन जाये यह क्या ठीक है ?

‘नहीं है दादा !’ मैंने कहा था । ‘पर संसार में सब तो सोचते नहीं ।’

‘इसीलिये कुछ लोग सबको मूर्ख बनाते हैं ।’

वे सोचने लगे थे । फिर कहा था : वे मन मिलाने के लिए बात नहीं कहते । वे संदेह बढ़ाने की बहस करते हैं ताकि उनके चेलों पर उनका प्रभाव बढ़ता रहे ।

‘तुम्हें दुख होता है ?’

‘होता है बेटा ।’

‘क्यों ?’

‘क्योंकि मैं उन्हें सोचने के लिए कहता हूँ । और वे लीक पर ही गाड़ी चलाये जाते हैं ।’

‘इससे उन्हें फायदा क्या है ?’

‘वे कीचड़ में पैसना नहीं चाहते । सोचते हैं वो राह है वही कासी है ।’

‘पर वे जिन रास्तों पर चलते हैं, वे कीचड़ में ही तो बने हैं !’ मैंने

पूछा था ।

पिता प्रसन्न हुए थे ।

‘कहा था : कमाल ! तू समझता है ?’

‘मैं नहीं जानता ।’ मैंने कहा था । ‘परन्तु तुम जो कहते हो, वह सब तुम्हें कहाँ मिला ! साधुओं के पास बैठने से दादा ! तुम तो पढ़ना लिखना भी नहीं जानते !’

‘पिता ने मुस्करा कर गाया था :

मैं मरजोबा समुद्र का
हुवकी मारी एक
मूँठी लाया ज्ञान की
जामें वस्तु अनेक ।
हुवकी मारी समुद्र में
निकसा जाय अकाम
गगन मंडल में घर किया
हीरा पाया दास ।
जा मरने से जग डरे
मेरे मन आनन्द
कब मरिहों कब पाइहों
पूरन परमानन्द ।

उन्होंने कहा था : वो मौत से नहीं डरते, वे जान लेते हैं ।

‘क्या दादा !’

‘यह संसार धोखे की आड़ में चलता है ।’

‘तो वे कहते क्यों नहीं !’

‘अपने स्वायों से डरते हैं ।’

‘क्या हैं वे !’

‘धन के बंधन ।’

‘उन्हें तोड़ना कठिन ही क्या है ?’

‘बेटा ! पेट नहीं बोलने देता । वह ही मौत से डराता है । मौत क्या है ? बुद्धि को बेच देना ।’

मैंने देखा था वे चिंतित लग रहे थे ।

मैंने कहा था : दादा !

‘क्या है ?’ वे चौंक उठे थे ।

‘मौत में आनन्द है ?’

‘उसमें है जो निर्भयता का फल है वही माया को काटना है ! आदमी की माया उसका संसार है ।’

‘तो यह संसार छोड़ना चाहिये ?’

‘नहीं, इस दुनिया को कौन छोड़ता है ? मैंने छोड़ी है क्या ?’

‘नहीं ।’

‘बेटा ! माया का अर्थ है मनुष्य के वे बंधन जो उसे मनुष्य होने से रोकते हैं ।’

‘मैं नहीं समझा दादा ।’

‘बेटा !’ पिता ने साँस खींचकर कहा था : ‘भगवान क्या है बता सकता है ?’

‘वही तो सब है ।’ मैंने उत्तर दिया था ।

‘पिता ने कहा था :

भजूँ तो को है भजन को

तजूँ तो को है आन

भजन तजन के मध्य में

सो कवीर मन मान ।

मैंने अनबूझ बनकर देखा था । मुझे विश्वास नहीं हुआ था । पूछा था : तो क्या भजन व्यर्थ है ? फिर तुम नाम महिमा क्यों लेते हो ?

पिता मुस्कराते थे । कहा था : ‘भगवान नहीं छोड़ा जा सकता है न ? तो फिर भजन करने के लिए है ही कौन ? किसको छोड़कर किसका भजन करूँ बेटा । खाली नाम का क्या लेना और त्याग का मोह भी किस लिये ? भजन करने के लिए कोई दिखता है तुम्हें ?’

‘नहीं दादा ।’

‘तो जो दिन रात भजन करते हैं वे क्या पाते हैं ।’

‘लेकिन दादा ! तुम तो नाम की दुहाई देते हो ।’

‘अब भी देता हूँ ।’

‘क्यों ?’

‘यह पूछ किनको देता हूँ ?’

‘मैंने अविश्वस्त दृष्टि से देखा था ?’

‘पिता ने कहा था : ‘उन्हें नाम याद दिलाता हूँ जो नाम भी भूल जाते हैं।’

‘पर किसका नाम पिता ?’

‘उस दृष्टि की शक्ति का, जो इस सब संसार और ब्रह्माण्ड में फैली हुई है । उसमें सब शक्ति है, सत्य है, क्या छोड़ा जा सकता है, क्या है जो भजन के ही योग्य है । बेटा ! माया में तो मनुष्य ने स्वयं अपने को बाँध लिया है।

‘तो क्या माया भगवान में नहीं है ?’

‘है बेटा । यह सत्य भी उसी का है, यह माया इस सत्य को ढँकती है ।

अतः यह भी उसी की है । पर यह माया वह नहीं है कि मनुष्य इससे निकल न सके । यह जान धूम कर उसमें फँसता है ।’

‘तो माया क्या है । दादा ?’

‘धन, रूप के धंधन । भूँठ, दगा, फरेब, अहंकार । वितण्डा, धर्म का

ढोंग, यह सब माया है ।’

‘मैंने सोचा था, पिता पुरानी राख को फूँक रहे थे, मुझे एक नयी आग सी भमकती हुई दिखाई दे रही थी । वह माया अब अवास्तविक छलना न रह कर वास्तविक बंधन लगाने लगी थी ।

माँ रोटी ले आई थी । चार मुझे दी थी, तीन पिता को । दो स्वयं लेकर लोटा पानी का भर कर पास ले आई थी । और हम खाने बैठ गये थे ।

पिता ने कहा था : लोई ! तू ही पालती है । तू ही खिलाती है । साँई एक दया कर । रोटी दिये जा ।

रूखा सूखा खान के

ठण्डा पानी पीव

देखि विरानी चूपड़ी
 मत ललचावै जीव ।
 कविरा साँई मुज्झ को
 रूखी रोटी देय
 चुपड़ी माँगत मैं डरूँ
 रूखी छीनि न लेय ।
 आधी अरु रूखी भली
 सारी सों संताप
 जो चाहैगा चूपड़ी
 बहुत करगा पाप ।

लोई ने कहा : गरीब को रूखी ही भली । झूठ तो नहीं बोलनी पड़ती
 इसके लिये ?

‘सच कहती है’, पिता ने कहा—‘लोई ! चुपड़ी रोटी ईमान और मेह-
 नत से नहीं मिलती । उसके लिये पाप करना पड़ता है । दूसरों को लूटना
 पड़ता है । गला काटना पड़ता है । राजा किसान को लूटता है, महंत शिष्यों
 को बहकाता है, जोगी भीख के लिए कर्तब दिखाता डराता धमकाता है ।’

मैंने देखा वे दोनों प्रसन्न थे । गले में रोटी अटक गई थी ।

माँ ने कहा : पानी तो पी ।

‘माँ, गले में अटकी है ।’ मैंने कहा था ।

माँ की आँखों में स्नेह छलक आया था । कह उठी थी : ‘बेटा ! जुलाहे
 का बेटा है ! जुलाहा बन । सुना नहीं दादा ने क्या कहा ?’

‘क्यों नहीं सुना माँ ।’

‘पर तुझे अच्छा नहीं लगा न ?’

मैं जबाब नहीं दे सका ।

पिता ने कहा : बेटा ।

मैंने आँखें उठाईं ।

‘रोटी अटकती है ?’

‘हाँ दादा ।’

है करलो । मैंने सोचा था सच कहता है यह आदमी । पर क्या इसीलिए बुराई करना ठीक है । उससे दूसरों का गला नहीं कटेगा क्या ?

माँ ने कहा : अरे कौन नहीं मरता । जोगी क्या अमर ही हो जाते हैं । ऐसा होता तो दुनियाँ खाली न हो जाती । और सदा जिये जाने की हविस ही क्यों हो ? पैदा होने वाले मरते रहें यही सबसे ठीक है ।

पिता ने कहा : मैंने कहा था भगवान हमारे दिन रात के कामों में ही है बाहर नहीं है ।

‘यह तुमने मुखबिरी क्यों कहा ?’ माँ ने पूछा ।

‘लोई ! गरीब के खिलाफ लोग धनी को बताते हैं और चन्द टुकड़ों के लिये गरीब का गला कटवाते हैं । इस तरह के लोग कभी भगवान को पा सकते हैं ?’

माँ ने कहा था : कौन कहता है ? छिः ! वे तो घोर पापी हैं ।

‘मैंने कहा था लोई’, दादा ने कहा था । ‘आज साधुओं में बहस चल रही थी ।’

‘मुझे वही सुनाओ ।’ माँ ने कहा था ।

पिता ने सोचते हुए दुहराया था :

ब्रह्महि ते जग ऊपजा
कहत सयाने लोग ।
ताहि ब्रह्म के त्यागि विनु
जगत न त्यागन जोग ।
ब्रह्म जगत का बीज है
जो नहिं ताको त्याग ।
जगत ब्रह्म में लीन है
कहहु कौन वैराग ।
नेत नेत जेहि वेद कहि
जहाँ न मन ठहराय ।
मन बानी की गम नहीं

ब्रह्म कहा किन ताय ।
 विन देखे वह देस की
 यात कहै सो कूर
 आपे खारी खात ही
 बेचत फिरत कपूर ।

'फिर ?' माँ ने पूछा ।
 'बे बिगड़ गये ।'
 माँ हंसी । कहा 'घका लगेगा तो कौन नहीं दिलेगा कंत । तुमने तो
 वेद को ही टकर मार दी ।'

'किसी ने देखा है यह ब्रह्म ?' पिता ने कहा । 'किसी ने नहीं । फिर सब
 कुछ उसी के लिये करने से तो काम नहीं चलेगा लोई । यह संसार तो उसी
 का रूप है । इसका अच्छे रूप में चलना ही तो ब्रह्म की उपासना है ।'

माँ प्रसन्न दिखाई दी । बोली : 'बे अब तो तुम्हें मोही नहीं कहते ?'
 उसका ध्यान्य पिता समझ गये । कहा : तू भूली नहीं है । बलख तक
 गया था लोई यह कबीर । क्या क्या कष्ट नहीं उठाये । एक बार भीख न
 मिली, तो साधियों साधुओं ने दौंग रचा । मैं तो शर्म से गढ़ गढ़ गया ।
 मैंने सोचा । यह माया नहीं तो क्या है ? स्त्री को तो माया कहें और आप
 दूसरे को घोखा देकर पेट पालें । यह क्या पाप नहीं था !'

खाना खतम हो चुका था । माँ लोटा उठाकर भीतर कोठे में चली गई
 थी । मैं श्रीपने लगा था ।

पिता गा रहे थे :

मोको कहाँ ढूँढता बंदे
 मैं तो तेरे पास में,

ना मैं बकरी, ना मैं भेड़ी
 ना मैं छुरी गंडास में
 नहीं खाल में नहीं पोंछ में
 ना हड्डी ना माँस में
 ना मैं देवल ना मैं मसजिद
 ना कावे केलास में
 ना तो कौनों क्रिया करम में
 नहीं जोग वैराग में
 खोजी होय तो तुरतै मिलि हौं
 पल भर की तालास में
 मैं तो रहौं सहर के बाहर
 मेरे पुरी मवास में
 कहैं कबीर सुनो भई साधो
 सब साँसों की साँस में ।

‘लोई !’ पिता ने पुकारा था ।

‘क्या है कंत !’ लोई आ गई थी ।

‘वह तो हर जगह है लोई !’

‘तुम मुझसे बार बार यह क्यों कहते हो ?’

‘मैं सचाई को दुहराता हूँ ।’

‘लेकिन मुझे लाज आती है ।’

‘क्यों !’

‘कहीं लोग सुनेंगे तो कहेंगे कि लोई का कबीर पर बंधन है । तभी कबीर पराग्य छोड़ बैठा है ।’

कबीर ने कहा : ‘वह होता तो और बात थी लोई । पर यह ही जीवन का बड़ा दर्शन है । पूर्ण है । वह तो पुरुष का दर्शन था, जो अपने को अधूरा मान कर चलता था ।’

‘सच कहते हो ?’

‘तुम्हें विश्वास नहीं होता !’

‘मुझे विश्वास नहीं क्यों होगा कंत ! मैं जानती हूँ तुम कभी झूठ से समझौता नहीं करते । मैं मानती हूँ कि नारी माया है, पर कब ! उनके लिए जो भोग को ही जीवन का सब कुछ मान लेते हैं । वे तो अरल में कभी प्रेम की पवित्रता को नहीं जान पाते । मैं अग्रद हूँ, तुम्हारे साथ रह कर क्या-क्या नहीं सीख गई हूँ कंत ! तुमने ही तो कहा था—

दूर वे दूर वे दूर वे दूर मति
 दूर की बात तोहि बहुत भावे
 अहै हज्जूर हाजीर साहबघनी
 दूसरा कौन कहु काहि गावे ।
 छोड़ दे कल्पना दूर का धावना
 राज तजि खाक मुख काहि लावे
 पेड़ के गहे ते डार पल्लव मिले
 डार के गहे नहि पेड़ पावे ।
 डार श्री पेड़ श्री फूल फल प्रगट है
 मिले जब गुरु, इतनी लखावें ।
 संपति मुख साहबी छोड़ जोगी भए
 धून्य की आस बनखंड जावे ।
 कहहि कव्चीर बनखंड में क्या मिल
 दिलहि को खोज दीदार पावे ।

तुमने नहीं कहा था !’

‘मैंने ही कहा था लोई । सारा देश एक पागलपन में डूब गया है । स्त्री और पंतान भी अपना महत्व रखते हैं । जो अपने ही माध्यम से सब को सोचते हैं, मैं उन्हें ही माया में फँसा हुआ देखकर कहता हूँ कि साथ कोई कुछ नहीं ले जाता ! सब यहीं रह जाता है । पर जो आदमी अपना पेट पालता है उसे क्या बीबी बच्चों का पेट पालना नहीं चाहिए ! मैं समझ गया हूँ । साधू कहते थे कि इस संसार के धंधे में आदमी पेट का धंधा ही याद रखता है और परमात्मा को भूल जाता है । पेट के धंधे के स्वार्थ में वह अंधा

होकर पाप भी करता है, अपने अपराधों में अपने आप जकड़ जाता है। मैं मानता हूँ यह सत्य है, क्योंकि आदमी का पेट मजबूर है, और आदमी पेट के लिए मजबूर है। पर आदमी की मेहनत मजबूर नहीं है। लोभ और तृष्णा को रोक कर आदमी ईमान की रोटी खुद कमा कर खाये। भगवान का भजन करने वाला प्राणी, अपने पेट के लिए दूसरों के सामने हाथ क्यों फैलाए। देखती हो। भीड़ की भीड़, यह साधुता के नाम पर जो भिखमंगों की जमात चलती है, वह क्या दूसरों की मेहनत से कमाये माल को हराम में नहीं खाती ! उस अन्न का फल गृहस्थ भोगते हैं, और साधू उसे खाकर भगवान को पाते हैं। यह कैसे हो सकता है। लोई ? शून्य की आशा में वनखण्ड जाने वाले भटके हुए लोग हैं करनी का फल तो मन में है। उसके लिये तो कहीं जाना भी नहीं पड़ता लोई। सोचती हो मैं क्या कह रहा हूँ। यही लोगों को नहीं भाता, पर क्या करूँ—

अवधू भूले को घर लानै
 सो जन हमको भागै
 घर में जोग भोग घर ही में
 घर तजि वन नहि जावै ।
 अनप्राप्त + वस्तु को कहा तजे
 प्राप्त को तजै सो त्यागी है ।
 सुअसील तुरंग कहा फेरे
 अफतर फेरे सो वागी है ।
 जगभव का गावना क्या गावै
 अनुभव गावै सो रागी है ।
 वन गेह की वासना नास करे
 कव्वीर सोई वैरागी है ।

वन को मुक्ति और गेह को बंधन क्यों समझता है यह मनुष्य है ?

पिता की बात सुनकर मुझे लगा पिता कुछ ऐसा कह रहे थे जो अशुभ था। तो क्या धर्म के नाम पर मुफ्त खाने वाले अधर्म कर रहे थे ?

वही विचार आज तक याद आता है जो एक स्फूर्ति सी जग उठती है। धर्म को पिता घरती पर ला रहे थे। वह कह रहे थे कि धर्म के नाम पर अनाचार मत फैलाओ। ससार में प्रेम और ईमानदारी से रहना ही धर्म है।

मैंने तब नहीं समझा था कि इस बात में कितनी गहराई थी। मों अवश्य प्रसन्नता के परे दिखाई देती थी। जैसे वह जो मुनने को आशा भी रख सकती थी। वह सब उसने सुन लिया था। उसने जीवन का नया सत्य सुना था। वह सब जो मन में झटकता था, पर स्पष्ट नहीं होता था, पिता ने उसे तर्क के साथ स्वरूप दिया था और वह बात एक सशक्त चेतना बन कर हमारे भोंपड़े में गूँजने लगी थी—“वह गूँज आज तक उसी रूप में कानों में बाकी रह गई, क्योंकि जब वह हटती है, तभी मुझे सुना सुना सा लगने लगता है, लगता है जैसे छीना झपटी हो रही है। पिता ने आधार को पकड़ा था, ढोंग के कारण को पकड़ा था। ढोंग भद्दा पैदा करवाने के लिए था, भद्दा चमत्कारों पर पलती थी। चमत्कार ही ढोंग था, जो रोटी सुरक्षित करने के लिए किया जाता था”

पिता कहते थे—

सिंहों के लंहड़े नहीं
हंसों की नहिं पाँत
लालों की नहिं बोरियाँ
साधु न चलें जमात।
सब बन तो चंदन नहीं
सूरा का दल नहिं
सब समुद्र मोती नहीं
यों साधु जग मांहि
साध कहावन कठिन है
लंबा पेड़ खजूर
चढ़े तो चाखी प्रेम रस
गिरे तो चकनाचूर
वृक्ष कबहुं नहिं फल भवें

नदी न संचें नीर परमारथ के कारने साधुन धरा सरीर ।

‘तो क्या’ मैंने पूछा था—‘साधु परमारथ करने को हैं दादा ?’

‘हाँ बेटा !’

‘सो क्यों दादा । तो वे भजन कब करेंगे ?’

‘बेटा ।’ पिता ने कहा—‘वे भजन करें, अपना कल्याण कर लें तो जगत को लाभ ही क्या ? और वह भजन भी क्या जो नाम और गीत में ही रहे । दूसरों के दुखों को भी देखने से रोक दे ।’

‘तो क्या दादा ! वे दूसरों के दुख में रम कर, फिर माया में लिप्त नहीं हो जायेंगे ?’

‘माया तो अपना बंधन है बेटा । दूसरे की परेशानी दूर करने को हाथ बँटाना तो माया नहीं है, माया को काटना है ।’

पिता ने सोच कर कहा : मिलने की क्या बात बेटा । वे ही तो सब जगह हैं ।

‘फिर उन्हें ढूँढ़ते क्यों हैं ?’

‘जो स्वार्थ में बंध जाते हैं, वे नहीं देख पाते, वे ही मूर्खता के कारण उसे ढूँढ़ते हैं, वना वह तो सब जगह है । वह ही पुण्यस्वरूप आलोक है । वह ईश्वर ही सब में है, उस ईश्वर को न पाने का कारण है कि अहंकार और मद में मनुष्य अपने संसार के व्यवहार को बिगाड़ लेता है, दूसरों को सताता है, दबाता है, उससे भगवान दूर हो जाता है, कहो कि भगवान से अपने आपको वे दूर कर लेते हैं, क्योंकि प्रेम और समता को मिटा कर अहं और भेद को उठाते हैं और वे दोनों तभी उठते हैं जब वे सचाई और प्रेम को, स्वतन्त्रता को दबा चुकते हैं ।’

पिता ने कहा था : बेटा ! यह संसार किधर जा रहा है । साधु के नाम पर टगई हो रही है । चारों तरफ धर छोड़ कर हाथ पर हाथ धर कर खाने का यह तरीका लोगों ने खूब निकाल लिया है ।

और पिता ने अपने आप विचोभ भरे स्वर से गाया था । मानों अपने

आपको मुना रहे थे...

साधू भया तो क्या भया
माला पहिरी चार ।
बाहर भेस बनाइया
भीतर भरी भंगार ।
माला तिलक लगाइके
भक्ति न आई हाथ ।
दाढ़ी मूँछ मुड़ाये के
चले दुनी के साथ ।
दाढ़ी मूँछ मुड़ाइ के
हूआ घोटमघोट ।
मन को क्यों नहि मूँड़िये
जामें भरिया खोट ।
केसन कहा विगारिया
जो मूँड़ो सौ बार ।
मन को क्यों नहि मूँड़िये
जामें विपै विकार ।
बाँबी बूटें बावरे
साँप न मारा जाय ।
भूरख बाँबी ना डसे
सर्प सबन को खाय ।

माँ हँसी थी ।

‘क्यों हँसती है लोहे ?’ पिता ने पूछा था ।

‘हँसुंगी नहीं । तुम बाहर न मुनाना इसे ।’

‘क्यों ?’

‘वे चिढ़ेंगे ।’

‘चिढ़ लेने दे । मैं क्या सचाई कहने से डर जाऊंगा ।

‘डरने को नहीं कहती । पर देखते हो । कमाल को भी देखा है ।’

‘देख लोई,’ कबीर ने कहा : ‘पाप के अनेक नाम हैं । अपनी निबलता को छिपाने के लिए आदमी बहाने ढूँढ़ता है । बहू बच्चे अगर उसकी आड़ बनते हैं तो वे ही माया के बंधन हैं । क्या यह जरूरी है कि मैं तुम दोनों के कारण डर डर कर जिंदगी काटूँ ?’

माँ ने कहा था : ‘डरने को तो कमाल भी नहीं डरता कंत ! क्यों रे मैं ठीक कहती हूँ ?’

मैंने रटा हुआ पद बड़े ऊँचे सुर से गाया था :

गुरु मिला न सिष मिला

लालन खेला दाँव ।

दोऊ बूढ़े धार में

चढ़ि पाथर की नाँव ।

जानंता बूझा नहीं

बूझि किया नहिँ गौन ।

अंधे को अंधा मिला

राह बतावै कौन ।

बंधे को बंधा मिलै

छूटै कौन उपाय ।

कर सेवा निरबंध की

पल में लेत छुड़ाय ।

वात बनाई जग ठगा

मन परमोधा नाहिँ ।

कह कबीर मन लै गया

लख चौरासी माँहि ।

पिता ने सुना तो आनंद हुआ था ।

बोले : तुम्हें किसने सिखाया है ।

नये भावों के सिद्ध ग्रंथधारमयी दिमागी गुत्ताओं में भूखे से गरजने लगते और बाहर आकर रुढ़ियों के शिकार करने को व्याकुल हो उठते । एक बार रिता ने बोगियों के अस्ताड़े में बाकर टट्टा मचा दिया । वे गा उठे—

ऐसा जोग न देखा भाई ।
भूला फिर लिये गफिलाई ।
महादेव का पंथ चलावे ।
ऐसी बड़ो महंत कहावे ।
हाट बाट में लागै नारी ।
कच्चे सिद्धन माया प्यारी ।
कब दत्ते ÷ मावामी X तोरी ।
कब सुकदेव तोपची जोरी ।
कब नारद बंदूक चलाया ।
ध्यान देव कब बंध बजाया ।
करहि लड़ाई मति के मंदा ।
ई है अतिथि कि तरबस वैदा ।
भए विरक्त सोन मन ठाना ।
सोना पहिरि लजावे बाना ।
धोरा धोरी कीन्ह बटोरा ।
गाव पाय जस चने करोरा ।

बोगी लदाई के लिये प्रजा को उकसा रहे थे । उन्होंने चमत्कार दिखाने की चेष्टा की । रिता ने उसे भी काट दिया । बोल उठे—

आसन उड़ा कौन बड़ाई ।
जैसे काग चील्ह मँडराई ।
जैसी भिस्त तैसी है नारी ।
राज पाट सब गिनै उजारी ।
जैसे नरक तम चंदन माना ।

‘मुझसे पूछते हो ? तुम नहीं जानते ?’

‘मैं समझा हूँ लोई । गुरु गद्दीवाला नहीं है, गुरु तो मेहनत करने वाला है ।

गुरु धोवी सिप कापड़ा
साबुन सिरजन हार ।

सुरत सिला पर धोइये
निकसै जोति अपार ।

माँ ने मस्ती से कहा : ‘कंत । मुझे नयी हिम्मत मिली ।’

‘तूने ही एक दिन सहारा दिया था लोई ।’

माँ ने कहा : ‘नहीं’, कबीर खुद जागा था ।’

पिता ने कहा : कच्ची मिट्टी का रूप जग उठा है—

गुरु कुम्हार सिप कुंभ है
गढ़ गढ़ काढ़ खोट ।

अन्तर हाथ सहार दै
बाहर बाह्र चोट ।

‘मैंने नयी परिभाषाएँ सुनीं । वह बातें जब घर के बाहर मैंने सुनाईं
तो जोगी बिगड़ उठे ।

गुरु !!

गुरु !! और ऐसे संसारी !!

वे उसे रूपक के तौर पर भी नहीं मानते ये ।

क्यों ?

क्योंकि सहज यानी और नाथ, सूफी और शाक्त सब गुरु को एक आड-
म्बर बना बैठे थे । ब्राह्मणों तक पर इसका प्रभाव था ।

पिता की ललकारें पथों पर गूँजने लगीं । आबाल वृद्ध सुनते । उनमें
विद्रोह सा जाग उठता । पिता के शब्द पुराने विश्वासों को भक्तभोर उठते ।

नये मावों के सिद्ध ग्रंथकारमयी दिमागी गुच्छाओं में भूखे से गरजने लगते और बाहर आकर रुढ़ियों के शिकार करने को ध्याकुल हो उठते । एक बार गिता ने बोगियों के असाढ़े में जाकर टट्टा मचा दिया । वे गा उठे—

ऐसा जोग न देखा भाई ।
भूला फिर लिये गफिलाई ।
महादेव का पंथ चलावै ।
ऐसो बड़ो महंत कहावै ।
हाट बाट में लावै नारी ।
कच्चे सिद्धन माया प्यारी ।
कव दत्त † मावासी † तोरी ।
कव सुकदेव तोपची जोरी ।
कव नारद बंदूक चलाया ।
व्यास देव कव पंच मजाया ।
करहि लड़ाई मति के मंदा ।
ई हैं अतिथि कि तरबस बैदा ।
भए विरक्त लोभ मन ठाना ।
सोना पहिरि लजावै बाना ।
घोरा घोरी कीन्ह बटोरा ।
गाव पाय जस चले करोरा ।

जोगी लड़ाई के लिये प्रजा को उफसा रहे थे । उन्होंने चमत्कार दिताने की चेष्टा की । पिता ने उसे भी काट दिया । मोल उठे—

ग्रासन उड़ए कौन बड़ाई ।
जैसे काग चील्ह मँडराई ।
जैसी भिस्त तैसी है नारी ।
राज पाट सब गिने उजारी ।
जैसे नरक तस चंदन माना ।

जस वाउर तस रहै सयाना ।
लपसी लौंग गनै एक सारा ।
खाड़ै परिहरि फांकै छारा ।

नारी के लिये बहिश्त का प्रयोग उन नारी विरोधियों में धधक उठा ।
उनके मार्ग को पिता ने विनाश का मार्ग कहा । उनको पिता ने बुद्धिहीन
कह दिया ।

काशी में बवंडर उठने के से आसार दिखाई देने लगे ।

भंग धोटते, सुलफ़ा पीते जोगी और मुफ़्तखोरे साधू अपने चिमटे बजाने
लगे । वे क्रुद्ध थे । पर कबीर फ़कड़ था, अक्खड़ था—निडर था, निर्द्वन्द्व^१ भीड़ें^२ उसे देखकर विह्वल हो जाती थीं ।

सारी काशी उसकी बात सुनकर भ्रूमती थी, परन्तु मुल्ला और पण्डित
नहीं सुनते । उनके मुख पर एक घृणा थी । यह जुलाहा ! नीच ! धर्म और
मजहब के विरुद्ध बोलता है । पिता ने भरी सड़क पर भीड़ में गाया :

ऐसो भरम विगुरपन^३ भारी !
वेद किताब दीन औ दोजख
को पुरुषा को नारी ।
माटी के घर साज बनाया
नादे विंदु समाना^४ ।
घन विनसे^५ क्या नाम धरहुगे
अहमक खोज भुलाना ।
एकौ हाड़ त्वचा मलमूत्रा
रुधिर गुदा एक मुद्रा ।
एक विंदु^६ ते सृष्टि रच्यो है
को ब्राह्मण को शुद्रा ।

* असमञ्जस ।

× शब्द ब्रह्म और विन्दु ।

+ वीर्य विनष्ट होने पर ।

÷ वीर्य ।

रजगुण ब्रह्म तमोगुण शंकर
सतोगुणी हरि सोई ।
कहै कबीर राम रमि रहिमा
हिंदू तुरक न कोई ।

पय पर लोगों में झलचल मच गई ।

परिहृत चिल्लाया : पापी है ।

मुल्ला चिल्लाया : काफ़िर ही नहीं, दोमख का रास्ता है ।

शूर जुलाहों में श्रावेष का झण्डा फहराने लगा ।

कबीर ने श्रादिनाद किया था ।

उसने गर्जन किया था कि इस देश में कोई हिंदू और कोई मुसलमान नहीं । उसने पुराने अहंकार और नए अहंकार, दोनों को समान रूप से खंडित किया था ।

उसने कहा था : मनुष्य मनुष्य है ।

सब मनुष्य समान हैं ।

उसने कहा था : यह देश अपना है । हम विदेशियों के रंग में रंगे तो नहीं, क्योंकि वे इस्लाम के नाम पर भटके हुए हैं ।

उसने कहा था : यह देश कुलीन उच्च वर्णों की संस्कृति का ही नहीं है, इसे ही सब कुछ मान लिया जाय, जिसके अन्याय और पाप को देशभक्ति और धर्म संस्कृति के नाम पर बचाया जाय । उसने तो एक नए मनुष्य के लिए नयी जमीन तैयार करने की कोशिश की थी । जहाँ विदेशी का अहंकार और अत्माचार न हो, जहाँ उच्चवर्णों का असाध्य और दंभ न हो । जहाँ मनुष्य के रूप में नीच माने जाने वाले उठें ।

उसने संस्कृति का नया रूप माँगा था । वह जागरण का स्वर था, जो वर्णों और संप्रदायों में से मनुष्य को मुक्त करना चाहता था । तभी उसने गाया था :—

राम के नाम ते पिंड ब्रह्मएड सब

राम का नाम सुनि भरम मानी

निरगुन निरंकार के पार परब्रह्म है

तासु को नाम रंकार जानी ।

विष्णु पूजा करै ध्यान शंकर धरै

मनहिं सुविरंचि बहु विविध वानी ।

कहैं कबीर कोउ पार पावै नहीं

राम को नाम है अकह कहानी ।

उसने कहा था कि ब्रह्म तो अकह है । उसे कोई नहीं जानता ।

अपनी संस्कृति के नाम पर जो उच्चवर्ण हम नीच वर्णों पर अत्याचार करते थे, वह सचमुच उच्चवर्णों की ही तो स्वार्थ साधिका थी । उस संस्कृति के उसी रूप की रक्षा से हमें क्या लाभ था !

और वह कबीर ही था जो उच्चवर्णों का विरोध करते समय यह नहीं भूला कि इस्लाम भी मुक्ति का रास्ता न था । वह वर्ण भेद नहीं मानता था, पर गरीब को वहाँ भी सुख न था । वह विदेशियों के सामने पराजित नहीं हुआ । उसने बताया कि इन दो के अतिरिक्त एक सत्य और था ।

वह सत्य था जनता का !

मनुष्य का !

अपराजित मनुष्य का ।

जो पिस रहा था, पर कबीर की फैलादी आवाज ने उच्चवर्णों की रुढ़ियों की दीवारों और विदेशियों की उठी हुई तलवारों को विभ्रान्त कर दिया ।

काशी के सिकलीगर, मनिहार, और निम्न जाति के लोग उठने लगे ।

कबीर की पुकार जनता की रोटी के साथ बढ़ने लगी और फिर गजब हुआ । वे नीच जातियाँ जो इस्लाम के अधिकारों की चकमक में मुसलमान हो गई थीं, उन्होंने अपनी पुरानी सत्ता को पहँचाना, उन्होंने स्वीकार किया वे बिक गई थीं, और फिर वे जातियाँ कबीर के झण्डे के नीचे आने लगीं । कबीर घर घर में नयी चेतना फैलाता रहा ।

काशी उस समय भारत का हृदय थी । वहाँ सब धर्म अपने अपने मठ लिए बैठे थे ।

केवल कबीर के पास कुछ नहीं था, केवल शब्द था, वह उसी शब्द को अपना ब्रह्म कहा करता था...

उनके उन्हास बढ़ने लगे :

वेद किताब मुन्त नहि मंथन
नाहि यमन परगाही ।
बांग निवाज नहीं तब कन्ना
गनी नहीं गोदा* ही ।
आदि अन्न मन मध्य न होने
आतम पवन न पानी !
मग बीरानी जीव जन्तु नहि
मागी मन्द न बानी ।
बहहि कबीर मुनो हो प्रपन्न
आगे करहु विचारा ।
पूरन कहा कहीं ते प्रगटे
किरतम+ किन ठगारा ।
अविगति को गति क्या कहें
जाके गाँव न टाँक ।
गुणों बिहीना पेगना
या कहि लीने गाउँ ।

उमने पुकारा था—

वेद स्मृति शास्त्र ज्ञान नहीं है ।
नमात्र भी अन्न नहीं है ;
कबीर ने पूछा : इनके पदले क्या था ।
उमने पूछा : इनके आगे क्या है ।

‘तुम नहीं जानते’, उमने कहा—‘कोई नहीं जानता । फिर जब कोई नहीं जानता, तो उसका नाम क्यों भरते हो ? उसका नाम रखर क्यों लड़ते हो ? वह तो कुम्हारी सीमाओं में आने वाला नहीं है । तुमने कुछ संकल से उसका नाम भर दिया !

था था, दादा ! तुम ब्रह्म को नहीं मानते ?
ने कहा था : 'बेटा ! मैं मानता हूँ पर सबको चलते देखता हूँ इसी
हूँ । पर वह निस्संदेह वह नहीं है जो यह लोग कहते हैं ।'

कि इनकी परमात्मा की कल्पनाएँ इनके अपने स्वार्थों के साथ लगी
का परमात्मा एक रुढ़ि है, यह लीक पीटते हैं, जानता है क्यों ?
यों भला ?

क्योंकि इनका परमात्मा ही इनके पेट भरने का साधन है ।
'तुम भी तो कहते हो वही परमात्मा सबका पेट भरता है ?'
पिता ने कहा था : 'ठीक है बेटा भरता है । पर क्या वह एक का भर
दूसरे का पेट काटता है ?'

में अवाक् रह गया था । पिता ने काशी के भरे बाजार में घोषणा की थी—
संतौ आनै जाय सो माया !
है प्रतिपाल काल नहिं बाके

ना कहूँ गया न आया ।
क्या मकसूद मच्छ कछ होना
शंखासुर न सँघारा ।

अहै दयालु द्रोह नहिं बाके
कहहु कौन को मारा ।
वे कर्ता न बराह कहावैं
घरणि धरैं नहिं भारा ।

ई सब काम साहेव के नाहीं
भूठ गहै संसारा ।

खंभ फारि जो बाहिर होई
ताहि पतिज सब कोई ।

हिरनाकुस नख उदर विदारे
सो नहिं कर्ता होई ।
बावन रूप न बलि की जाँचैं

जो जाँच सो माया
 बिना विवेक सरुन जग जेहड़ेऊ
 माया जग भरमाया ।
 परशुराम छत्री नहि मारा
 ई छत्र माया कीन्हा
 सत्र गुण भक्ति भेद नहि जानै
 जीव अमिय्या दीन्हा ।
 मिरजनहार न व्याही सीता
 जल पखान नहि बंधा
 वे रघुनाथ एक कै मुमिरै
 जो मुमिरै सो बंधा ।
 गोप भवान गोबुल नहि घाण
 करने+ कंत न मारा
 मेहरवान है सबका माहव
 नहि जीता नहि हारा ।
 वे कर्ता नहि घोष * कहावै
 नहीं अमुर को मारा
 ज्ञानहीन कर्ता सब भरमे
 माया जग गंहारा ।

* जकड़ दिया+ चर्चा * बुद्ध : कबीर के समय में बुद्ध की अमुरों का नाशक कहते थे । नानक ने भी ऐसा ही कहा था ।

तब तक बौद्ध समाप्त हो चुके थे । बुद्ध की भारत में ब्राह्मणों ने पूज्य मान लिया था । बुद्ध ने ईश्वर और वेद का विरोध किया था । इस बात को थोड़ा देखा गया—भगवान ने बुद्ध को कर्मकाण्ड की दिशा की अति रोकने को मेवा था । अमुर वेद को नष्ट करना चाहते थे । बुद्ध ने कहा : वेद दे ही नहीं ईश्वर दे ही नहीं । इस प्रकार बुद्ध ने अमुरों को धम में डाल दिया और उनके संहार कर दिया ।

‘नया रास्ता ।’

मैंने देखा !’ उस समय पिता के मुख पर मनुष्य के मविष्य के विषय में चिन्तन करते हुए अन्वष्ट विस्वास था ।

‘वह रास्ता धीन सा देवता मानता है दादा ।’

‘देवता ।’ दादा ने कहा—‘मैं कैसे बताऊँ कमाल ! मैं नहीं जानता । वह सब करता है पर उसे कोई बता कैसे सकता है, वह निश्चय उन रूढ़ियों और सीमाओं में बंधा नहीं है, जैसा ये लोग कहते हैं ।’ वे गाने लगे थे—

तेहि साहब के लागो साया
 दूइ दुख भेटि के होहु सनाया ।
 दशरथ कुल अवतरि नहि आया
 नहि लंका के राय सताया ।
 नहि देवकि के गर्भहि आया
 नहीं यशोदा गोद खिलाया ।
 पृथ्वी रमन दमन नहि करिया
 बैठि पताल नही बलि छलिया ।
 नहि बलिराम सों भाँड़ी राती
 नहि हरिनाकुस बघल पछारी
 रूप बराह धरणि नहि धरिया
 छत्रों मारि निहृत्रि न करिया ।
 नहि गोवर्धन कर पर धरिया
 नही ग्वाल संग वन वन फिरिया ।
 गंडक सालग्राम न शीला
 मत्स्य कच्छ हूँ नहि जलहीला ।
 द्वारावती सरीर न छाँड़ा
 लौ जगनाथ पिंड नहि गाड़ा ।
 कहहि कबोर पुकारि के
 या पंचे मत नुलि ।

जैहि राखे अनुमान करि
थूल नहीं असथूल ।

मैं समझा ।

पिता ने कहा : अगर इस्लाम से लड़ना है तो अवतार अच्छे हैं, ब्राह्मण धर्म है । पर क्या इस्लाम और ब्राह्मण धर्म के अलावा आदमी के लिये कोई रास्ता नहीं है जिसमें धृणा, भेद, ऊँच नीच न हो । लेकिन प्रजा नहीं समझती । वह इन्हीं के बंधनों में है । दुनिया से रोज की बुराई का दूर होना ही माया का हट कर भगवान का प्रकट होना है । लोग हिंदू संस्कृति की बात करते हैं, पर संस्कृति क्या वणों में बँधी है । हम दीन क्या कुछ नहीं है ?

पिता चिंता में डूब गये थे ।

मैंने पूछा था : 'दादा नया धर्म कैसा होगा ?—

'बेटा वह रूढ़ि नहीं होगा ।' पिता ने कहा और वे मग्न होकर गा उठे—

साधु साधु सब एक हैं
ज्यों पोस्ते का खेत
कोई विवेकी लाल है
नहीं सेत का सेत
जाति न पूछो साध की
पूछ लीजिये ज्ञान
मोल करो तलवार का
पड़ा रहन दो म्यान
साधू भूखा भाव का
धन का भूखा नाहिं
धन का भूखा जो फिरें
सो तो साधू नाहिं ।
विना वसीले चाकरी
विना बुद्धि की देह
विना ज्ञान का जोगना
फिरें लंगाये खेह ।

घोर मने देखा रिता हाथ की कलाई पर बिजना खोर देने थे । अब मने देखा है कि दक्षिण के पिशाचन भी बापिक नर बड़ा खोर देने हैं । रिता की कुत्तामोरी में निद थी ।

मुझे दृश्य एक बात में सब धर्मों के धनदाता की तद् बतती हुई दिखाई दी ।

रिता वहसे गगुन मानने थे ।

द्विरे ये रक्षक की घोर मुर्दे ।

रक्षक ने रक्षक पर गनुनाया ।

रक्षक ने गाधू बनाया ।

गाधू बन कर भीन मगिनो नदी तो पूछा दो गदं ।

देठ के निवे इज्जत ने दुकाग ।

इज्जत ने कहा—मेहनत कर ।

मेहनत ने ईमान की घोर भेजा ।

ईमान ने उम्हे टोंग ताकिर बना दिया ।

संगार में पदने बिदगी की जिम्मेदारियाँ ही माया मानी जाती थी । रिता ने उन जिम्मेदारियों में दूसरे की दुख देने की गले काटने वाली बात को माया कहा ।

गगुन ये मानने नदी थे, क्योंकि गगुन की छाद में मनुष्य रुदियों को मानता था । ब्राह्मण टींग देखाते थे ।

निधुंग की ये नदी माना थे, क्योंकि उसे किसी प्रकार कोई समझ नही सका था ।

दिगा ने उम्हे बड़ी पूछा थी । तभी कहा था—

बकरी पानी गान है

ताली बाती गान

जो बकरी को गान है

ताली कौन हवात ।

दिन को रोजा रहन है

रात हुनत है गाय

यह तो घून यह घँदगी

कहु क्यों खुसी खुदाय ।
 खुसी खाना है खीचरी
 माहि परा टुक नौन
 माँस पराया खाय कर
 गरा कटानै कौन ।

मुसलमान शासक थे । जब उन्होंने सुना तो उन्हें क्रोध हो आया ।

मुल्ला रहमान अपने मुरीदों के साथ आये ।

‘कहाँ है वह जुलाहा ?’ वे पुकार उठे ।

हम तब चबूतरे पर बैठे थे । पिता ने खड़े होकर कहा : ‘आयें । विराजें ।

हम पवित्र हुए ।

मुल्ला जी शांत हुए ।

कहा : ‘तुना है तुम मुसलमानों के खिलाफ लोगों को भड़का रहे हो ?’

‘नहीं मुल्ला साहेब ।’ पिता ने कहा—‘मैं किसी से जलता नहीं ।’

मुल्ला जी ने अपने मुरीदों की ओर देखा । जैसे अब कहो ।

एक मुरीद ने कहा : ‘नहीं साहेब ! यह जुलाहा कहता था कि रोजा

रखने वाला गाय खाता है । यह क्या हिन्दू वाली बात नहीं है ?’

‘तुमने कहा था ?’ मुल्ला ने पूछा ।

पिता मुस्कराये । कहा : ‘तो किसी बेकुल जानवर की जान की हिफाजत

करना आदमी को हिन्दू बना देना है ?’

‘लेकिन हिन्दू गाय को नहीं खाते ।’ मुल्ला जी ने कहा ।

‘न खायें ।’ पिता ने कहा—‘वे दूसरे माँस खाते हैं ।’

‘तौ तुम वैशनों हो ?’ मुल्ला जी ने कहा ।

‘नहीं ।’

‘क्या हो ।’

पिता चुप रहे ।

मुल्ला जी ने फिर पूछा । पिता ने कहा—

ऐसा लो तत ऐसा लो,

मैं केहि विधि कहाँ गँभीरालो ।

बाहर कहा तो सतगुरु लार्जे
भीतर कहों तो झूठ तो ।
बाहर भीतर सकल निरंतर
गुरु परताप दीठा तो ।

मुल्ला जी समझे नहीं । कहा : तो तू अल्लाह को भी नहीं मानता ।
बोच है ?

‘नहीं ।’ पिता ने कहा ।

‘फिर ?’

‘मैं नहीं कह सकता’, पिता कह उठे—

एक काल सगल संसारा
एक नाम है जगत पियारा ।

तिया पुस्त कथु कयो न जाई
सर्व रूप जग रहा समाई ।

‘मुझे स्त्री पुरुष सबमें यही दिखाई देता है, पर यह स्त्री नहीं है, पुरुष नहीं है, यह निराकार नहीं है, साकार में सीमित नहीं है ।’

मुल्ला जी विचम्ब हो उठे । बोले—‘तू कुछ नहीं मानता !’

‘मैं सब मानता हूँ’, पिता ने कहा ।

‘तो उसे समझा नहीं ~~सकता~~ ।’

‘आदमी की अकल ही कितनी मुल्ला सादेब । आदमी की पदुग ही कितनी । वह तो उतना ही जानता है जिसकी कल्पना कर सकता है—

अवधू छोड़हु मन विस्तारा ।

तो पद गहो जाहिते सद्गति

पारब्रह्म से न्यारा ।

नही महादेव नहीं महम्मद

हरि हजरत सब नांही

आदम ब्रह्म नाहि सब होते

नही घूप नाहि छोही ।

असीकसहस्र पैगम्बर नाहीं
सहस्र अठासी मूनी+
चंद्र सूर्य तारागन नाहीं
मच्छ कच्छ नहिं दूनीं ।

‘क्या बकता है ?’ मुल्ला जी गरजे ।

पिता ने कहा : मैं सच कहता हूँ मुल्ला साहब ! आप ही बतायें—

पेटहुँ काहु न वेद पढ़ाया
सुनति कराय सुरक नहिं आया,
नारी गोचित गर्भ प्रसूती
स्वाँग धरै बहुतें करतूती ।
तहिया हम तुम एकैं लोहू
एकैं प्राण वियायल मोहू ।

मुल्ला जी क्रोध से उठ खड़े हुए । बोले : सुना तुम सबने । काजी जी के पास चलो । यह अपने को न हिन्दू कहता है, न बौध, पर मुसलमानों की झुर्राई करता है ।

‘मजाल तो देखिये आका !’ एक मुरीद ने दाद दी । ‘यह सब काफिर हैं।

मुल्ला जी ने पलट कर कहा : ‘जुलाहे ! तू आग में हाथ डाल रहा है।’

‘कैसे मुल्ला साहब ।’ पिता शांत थे ।

‘बता ।’ मुल्ला चिल्लाया । तू कौन मजहब मानता है ?’

पिता उठे । उन्नत ललाट उन्होंने हाथ उठा कर पुकारा—

ना मैं धरमी, नाहिं अधरमी
ना मैं जती, न कामी हो ।
ना मैं कहता, ना मैं सुनता
ना मैं सेवक, स्वामी हो ।
ना मैं वंघा, ना मैं मुक्ता

ना निरबन्धी सरबन्गी हो ।
 ना काहू से न्यारा हुआ
 ना काहू को संगी हो ।
 ना हम नरक लोक को जाते
 ना हम सरग सिधारे हो ।
 सब ही कर्म हमारा किया
 हम कर्मन ते न्यारे हो ।

कोई नहीं समझा ।

एक जोगी जो मुसलमान हो गया था बोला—सुन्न को मानने वाला लगता है ।

पिता ने कहा : नहीं । वह सुन्न अगर मुझे बोधता है तो मैं बंधने को तैयार नहीं हूँ । मेरे लिये सब बराबर हैं । मैं किसी भेद भाव को नहीं मानता—

आपुहि करता मे करतारा ।
 बहु विधि वासन गढ़े कुम्हारा
 विधना सबै कीन यक ठाऊँ
 अनिक जतन कै बनक बनाऊँ
 जठर अग्नि महुँ दिय परजाली
 तौम आप भये प्रतिपाली ॥
 साँची बात कहौ मैं अपनी ।
 भया दिवाना और कि सपनी
 गुप्त प्रकट है एकै मुद्रा ।
 काको कहिये, ब्रह्मन मुद्रा ॥
 भूठ गरब भूलै मति कोई
 हिंदू तुल्य भूठ कुल दोई ।

‘भूठ !’ मुझा गरजा ।

‘हिंदू भी ?’ कोई चिल्लाया ।

‘नास्तिक है ।’

‘अरे नीच जुलाहा है ।’

पिता ने कहा : तुम भूले हुए हो । अगर तुम सचमुच भगवान के बनाये अलग २ हो, अगर हिंदू और मुसलमान जन्म से अलग हों तो मैं झूठा हूँ । बोलो—

जो तोहि कर्ता वही विचारा
जन्मत तीन दरग़ अनुसारा
जम्मत शूद्र भए पुनि शूद्रा
कृत्रिम जनेऊ घालि जगदुंद्रा ।
जो ब्राह्मन बाम्हनि जाए
और राह तुम काहे न आये ?
जो तू तुरक तुरकिनी जाया +
पेटे काहे न सुनति कराया ?
कारी पीरी दूहौ + गाई
ताकर + दूध देहु बिलगाई ।

यह ऐसी भयानक बात थी जिसका इन स्पष्ट शब्दों में सुनने को वहाँ किसी में भी ताव नहीं थी । सीधी चोट थी । लेकिन वह इन्सान की पुकार थी, वह जो न उच्चवर्णों से दबी थी, न इस्लाम के खड्ग से ।

पिता ने जोर से हॉक लगाई—

दुइ जगदीश कहाँ ते
कहु कौनै भरमाया
अल्ला राम करिम केशव हरि
हजरत नाम धराया ।
गहना एक कनक ते गहना

× पैदा किया हुआ

× दुहो

*गाय

×उनका

अलग कर दो !

ताने भाव न दूदा
 कहन सुनन को दुई कर धाते
 एव नेवाज एव दूदा ।
 वही महादेव वही मुहम्मद
 ब्रह्मा फारुख बर्खुर
 कोई हिंदू कोई तुर्क बहावे
 एक जनों पर गीते ।
 वेद बिताव पड़ै वे कुतुबा
 वे मोनावा वे गाने
 विगत विगत के नाम धरनी
 एव भाटी के भाटी ।
 कह बबोर ते दोनों नून
 समझे सिद्ध न सन,
 वे मसिना, वे गाय बहावे
 वारेन जनन बहान ।

निता ने कहा था—एक जन्म न गन है ।

जमीन !

जमीन !!!

मेरे जानों में गूँबने लगी ।

सनता किम्वी !

घाटी की !

क्यों !

क्योंकि कोई भेद नहीं लगता ।

यह बाद छाती लफो के जाते हैं ।

निता को मुसलमान विरोधी जन का भी दुश्मन नहीं है । वह सभी को
 रुद्धियों में बहका देने के । इस्लाम के बहाली की दुश्मन की समझता

उस नौच का अद्वयन के गूँब लगाने के ।

● बहाना बहाने : बहाना निता के

और पिता ने जो मुल्ला साहब से कहा था उससे मिलता जुलता ही
 उन्होंने किसलते पंडितों से भी कहा था :

पंडित देखो हृदय विचारी
 कौन पुरूष को नारी ।
 सहज समाना घट घट वौलै
 वाको चरित अनूपा
 वाको नाम कहा कहि लीजै
 ना ओहि वरन न रूपा ।
 वेद पुरान कुरान कितेवा
 नाना भाति बखानी
 हिंदू तरुण जैन श्री, जोगी
 एकल काहु न जानी ।
 छ दरशन* में जो परवाना+
 तामु नाम मनमाना
 कह कवीर हम ही हैं वरुणा
 ई सब खलक० सयाना ।

उन्होंने स्पष्ट कहा था कि कोई भी भगवान को नहीं जानता । सब
 भगवान की आड़ में पाप कमाते हैं । उन्होंने व्यंग्य से कहा भी था कि यह सब
 जहान सयाना है, केवल कबीर ही पागल हो गया है । वे यह न कहते तो
 कहते भी क्या ? कोई विश्वास ही नहीं करता था ।

*षट् दर्शन

+प्रमाण

x पागल

० संसार

वह रात की बेला थी । पिता ने गाया था :

जल बिच मीन पियासी ।

मोहि देखि देखि आगे हाँसी ॥

श्रीर सचमुच वे हैंस उठे थे ।

‘क्या हुआ ?’ मैंने पूछा था ।

‘बेटा मुझे रोना आता है ।’

‘पर तुम हैंसते हो ?’

‘श्रीर मैं करूँ भी क्या ?’

‘क्यों ?’

‘देखता है यह संसार कितना भटका हुआ है । सारे अहान में भगवान है । सृष्टि ही एक आश्चर्य है । उस आश्चर्य की सीमाएँ बाँधकर यह लड़ता है और अपनी सीमित बुद्धि को ही सब कुछ कहने लगता है ।’

दूसरे दिन उधर अज्ञान की पुकार सुनाई दी, इधर पिता ने सड़क पर तान छोड़ी—

ना जाने तेरा साहेब कैसा ।

मसजिद भीतर मुल्ता पुकारे

क्या साहेब तेरा बहिरा है

चिउँटी के पग नेवर बाजें

[redacted] भी साहब सुनता है ।

पण्डित होय के आसन मारें

लंबी माला जपता है ।

अन्तर तेरे कण्ठ कतरनी

सो भी साहब लखता है ।

ऊँचा नीचा महल बनाया

गहरी नींव जमाता है ।

चलने का मनसूबा नहीं

रहने को मन करता है ।

कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी

गाड़ि जमीं में घरता है ।
 जेहि लहना है सो लै जैहै
 पापी बहि बहि मरता है ।
 सतवंती को गजी मिलै नहि
 वेश्या पहिरे खासा है ।
 जेहि घर साधू भीख न पावै
 भड़ुआ खात बतासा है ।

लोग इकट्ठे होने लगे थे ।

पंडित मुल्ला, जोगी, जैनी, सब ही असन्तुष्ट थे । पर दलित जनता प्रसन्न थी ।

कबीर ने कहा था : तुम धरम के नाम पर वेश्या को नचाते हो और वह स्त्री जो सती साध्वी है उसे पेट भरने को भी नहीं मिलता । एक ओर स्त्री से खिलवाड़ करके तुम स्त्री के गौरव को घटा रहे हो । जो जीवन को पवित्रता से बिताते हैं उन्हें सहायता नहीं देते, भीख तक नहीं देते, भड़ुओं को बतासे खिलाते हो । धन जोड़ते हो, वही तो माया है ।

परन्तु उच्च वर्गों ने नहीं सुना ।

वे सब अलग अलग गिरोह बंदी करके पिता की हत्या की योजना करने लगे ।

मैं पिता को घर ले आया ।

‘लोई’, पिता ने कहा—‘कमाल घबराता है ।’

माँ ने मुस्करा कर कहा—‘मेरा बेटा डरना क्या जाने कंत । वह पीछे नहीं रहेगा ।’

दूसरे दिन तो वे सोचते रहे, पर तीसरे दिन दुपहर ढले वे बाजार में गाने लगे—

अरे इन दोउन राह न पाई ।
 हिंदू अपनी करै बड़ाई
 गागर छुवन न देई ।
 वेश्या के पायन तर सोवै

यह देसो हिंदुभाई ।
 मुसलमान के पीर श्रीनिया
 मुरगी मुरगा साई ।
 साला केरी बेटी ब्याहें
 घरहि में करे सगाई ।
 बाहर से इक मुर्दा लाए
 धोय पाय चढ़वाई ।
 सब सतियाँ मिलि जेवन बेठी
 घर भर करे बड़ाई ।
 हिंदुन की हिंदुभाई देखी
 तुरकन की तुरकाई ।
 कहैं कबीर गुनो भाई साधो
 कोन सह हूँ जाई ।

झुलादे ठट्ठा करके हिंदुओं और मुसलमानों को बिदाने लगे ।
 एक पंडित आगे आया । उसने कहा : कबीर ! मुझे जबाब दे ।
 पिता ने मुझकर देखा ।

‘मैं पूछता हूँ तू मुसलमानों का गुप्त प्रचार कर रहा है ! तभी तू छूत
 मिटाना चाहता है !’

पिता ने कहा : नहीं पाण्डित जी ! मैं उनकी तारीफ़ नहीं करता । मुझे
 तो दोनों ही में खोट दिखाई देता है ।

‘खोट दीगता है तो तू अपना मार्ग बना ।’

‘मार्ग एक नहीं हो सकता बाबा । मार्ग की लकीर न खींचो, न
 उसे पीटो ।’

‘तो मरजाद क्या रहेगी !’

‘आदमियत ।’

‘वह क्या है !’

‘किसी को दुख न देना ।’

‘पर वह तो कहने की बात है कबीर, करने में कभी न आई है न आयेगी’
पिता ने आँखें उठाकर दूर देखते हुए कहा-वह दिन भी आयेगा बाबा ।
वह दिन भी आयेगा ।

‘आयेगा तब आयेगा, अभी तो धरम रख ।’

कुछ मुसलमान इस चर्चा से खुश थे ।

एक ने कहा : कबीर तू मुसलमान होजा ।

‘होऊँगा,’ पिता ने कहा—‘पर पहले मुझे यह समझाओ—

दर की बात कहौ करवैसा
बादसाह है कौने भैसा ।
कहाँ कूच कहँ करे मुकामा
कौन सुरति को करौं सलामा ।
मैं तोहि पूछों मुसलमाना
लाल जरद का ताना वाना ।
काजी काज करो तुम कैसा
घर घर लवै करावौ नैसा ।
वकरी मुरगी किन फुरमाया+
किसके हुकुम तुम छुरी चलाया ।
दरद न जाने ~~कौन~~ कहावै
वैताळ पढ़ि पढ़ि जग से भुलावै ।
कह कबीर एक सय्यद कहानै
आप सरीखा जग कबुलानै ।

हिंदू चिल्लाये : जो हो कबीर अपना ही है ।

कबीर ने चिल्ला कर कहा : नहीं, मैं किसी का नहीं हूँ । मैं किसी का नहीं हूँ ।

वे चिल्लाये—तू कौन है ?

+ बनाये ।

छन्द ।

‘मैं आदमी हूँ ।’

‘तू भगवान मानता है ?’

‘मानता हूँ ।’

‘वह क्या है ?’

‘मैं नहीं जानता, न तुम जानते हो । तुममें से कोई नहीं जानता, सब झूट कहते हो ।’

पिता का स्वर दृढ़ था । उन्होंने कहा: बता सकते हो, उसे बता सकते हो !

उस स्वर को सुनकर कोई नहीं बोला ।

पिता ने फिर कहा : वह अगम है और इसलिये हमारी सीमित बुद्धि से परे है । उसके नाम पर तुम लड़ते हो । तुम दोनों ही सच्चाई से बहुत दूर हो । तुम पागल हो । तुम सच्चाई को सह नहीं सकते । तुम पागल हो गये हो । तुमने अपनी बुद्धि को बाँध लिया है ।

और पिता ने मुनाथा—

सैंतो देखड़ जग बोराना

साँच कहो तो मारन धागे

भूठे जग पतियाना ।

नेमी देखे धरमी देखे

प्रात करहि असनाना ।

आ  पपाणहि पूजें

उनमें कछू न ज्ञाना ।

बहुतक देखे पीर श्रीलिया

पढ़ें किताब कुराना ।

कै मुरीद तदवीर बतावे

उनमे उहै गियाना ।

आसन मारि डिमः घरि बैठे

मन में बहुत गुमाना ।

‘पर वह तो कहने की बात है कबीर, करने में कभी न आई है न आयेगी पिता ने आँखें उठाकर दूर देखते हुए कहा—वह दिन भी आयेगा बाबा वह दिन भी आयेगा ।

‘आयेगा तब आयेगा, अभी तो धरम रख ।’

कुछ मुसलमान इस चर्चा से खुश थे ।

एक ने कहा : कबीर तू मुसलमान होजा ।

‘होऊँगा,’ पिता ने कहा—‘पर पहले मुझे यह समझाओ—

दर की बात कही करवैसा
वादसाह है कोने भैसा ।
कहाँ कूच कहँ करे मुकामा
कौन सुरति को करों सलामा ।
मैं तोहि पूछों मुसलमाना
लाल जरद का ताना बाना ।
काजी काज करो तुम कैसा
घर घर लवी करावौ वैसा ।
बकरी मुरगी किन फुरमाया+
किसके हुकुम तुम छुरी चलाया ।
दरद न जाने ~~कहावे~~ कहावे
वैताळ पढ़ि पढ़ि जग से भुलावै ।
कह कबीर एक सय्यद कहावै
आप सरीखा जग कबुलानै ।

हिंदू चिल्लाये : जो हो कबीर अपना ही है ।

कबीर ने चिल्ला कर कहा : नहीं, मैं किसी का नहीं हूँ । मैं किसी का नहीं हूँ ।

वे चिल्लाये—तू कौन है ?

+ बनाये ।

* छन्द ।

‘मैं आदमी हूँ।’

‘तू भगवान मानता है?’

‘मानता हूँ।’

‘वह क्या है?’

‘मैं नहीं जानता, न तुम जानते हो। तुममें से कोई नहीं जानता, सब झूठ कहते हो।’

पिता का स्वर दृढ़ था। उन्होंने कहा: बता सकते हो, उसे बता सकने हो!

उस स्वर को सुनकर कोई नहीं बोला।

पिता ने फिर कहा: वह अगम है और इसलिये हमारी सीमित बुद्धि से परे है। उसके नाम पर तुम लड़ते हो। तुम दोनों ही सच्चाई से बहुत दूर हो। तुम पागल हो। तुम सच्चाई को सह नहीं सकते। तुम पागल हो गये हो। तुमने अपनी बुद्धि को बाँध लिया है।

और पिता ने सुनाया—

सैंतो देखउ जग बोराना

साँच कहो तो मारन धावै

भूठे जग पतियाना।

नेमी देखे घरमी देखे

प्रात करहि असनाना।

आर पपाणहि पूजे

उनमें कछु न ज्ञाना।

बहुतक देखे पीर औलिया

पढ़ें किताब कुराना।

कैं मुरीद तदवीर बतावै

उनमें उहै गियाना।

आसन मारि डिभ-वरि बैठै

मन में बहुत गुमाना।

पीत पाथर पूजन लागे
 तीरथ गरव भुलाना ।
 माला पहिरे टोपी दीन्हें
 छाप तिलक अनुमाना ।
 साखी सबदै गावत भूले
 आतम खवरि न जाना ।
 कह हिंदू मोहि राम पियारा
 तुरुक कहैं रहिमाना ।
 आपस में दोउ लरि लरि मूए
 मरम न काहू जाना ।

मैंने बढ़ कर कहा : पर दादा । तुम्हें समझाना होगा । वह भगवान है या ?

पिता ने कहा : तो सुन कमाल—

बाबा अगम अगोचर कैसा
 ताते कहि समुझाओं ऐसा ।
 जो दीसै सो तो है नाहीं,
 है सो कहै न जाई ।
 सैना वैना कहि समझाओं
 गूँगे का गुड़ भाई ।
 दृष्टि न दीसै, मुष्टि न आवै
 विनसे नाहि नियारा ।
 ऐसा ज्ञान कथा गुरु मेरे
 पण्डित करौं विचारा ।
 विन देखे परतीति न आवै
 कहे न कोउ पतियाना ।
 समुझा होय सो सबदे चीन्है
 अचरज होय अयाना ।

वामन नाम वराया ।
 केते वौघ भये निकलंकी
 तिन भी अन्त न पाया ।
 केतिक सिघ साधक संन्यासी
 जिन वन बास वसाया ।
 केते मुनिजन गोरख कहिये
 तिन भी अन्त न पाया ।
 जाकी गति ब्रह्म नहिं पाए
 शिव सनकादिक हारे ।
 ताके गुन नर कैसे पैहो
 कहै कवीर पुकारे ।

और पिता के अनुसार यह वर्ण भेद, जाति भेद, धर्म भेद यह सब अपू-
 रणेश्यों के चिन्ह थे ।

उनका हंस तो सृष्टि के रहस्य पुरुष के पास जा रहा था । बाकी सारी
 कल्पनाएँ नीची थीं* । षट्चक्र के ज्ञानी भोगी जिन्हें पार करते हैं, उनसे भी
 परे वह उड़ता है । X जब हिंदू उसकी उपमा नहीं दे सकते+ आनन्द के द्वार
 जब सारे फंदे छूट जाते हैं वहीं पिता का सत्यालोक प्रारम्भ होता है, ÷ वा-
 लोक उनका उत्कर्ष है । फंदे वही हैं जो मनुष्य को कायर, लोभी, अत्याचारी
 कामी बनाते हैं ।

उसका वर्णन ही कौन कर सकता है—

करत वीहार मन भावनी मुक्ति भै
 कर्म और भर्म सब दूर भागै ।
 रंक औ' भूप कोइ परख आवै नहीं
 करत कल्लोल बहुभांति भागै ।

* तासु के बदन की कौन महिमा कहौ !

X हंस जात षट्चक्र को वेध के सातमुक्काम में नजर फेरा ।

+ रूप की राशि ते रूप उनको बना हिन्दु भी नहीं उपमा निबेर

÷ भये आनन्द से फन्द सब छोड़िया जहाँ सतलोक मेरा ।

जागे और भीड़ों ने कहा : कबीर ठीक कहता है ।

कौनसा कबीर !

जो हिंदू नहीं है । जो मुसलमान नहीं है । जो जोगी नहीं है ।

जो छुआछूत और ऊँच नीच नहीं मानता, जो हिंसा और दंभ नहीं मानता, जो समाज से दूर रहकर दूसरों की कमाई पर पलना नहीं मानता । जो स्त्री को केवल भोग की वस्तु नहीं मानता, जो संतान के मोह में दूसरों का गला काटना नहीं मानता, जो धन को ही धन के लिये नहीं चाहता । उसे कोई माने या न माने पर इन्हीं पूर्ण विश्वासों ने उस नंगे गरीब को वह आत्म गौरव दिया था कि वह पुकार उठा था—

घरती तो आसन किया

तम्बू कौ असमाना ।

चोला पहिरा खाक का

रह पाकळी समाना ।

और यह सब मनुष्यों को समान मानने की घोषणा आज तक मेरे कानों में गूँज रही है और शायद युगों तक यह इसी तरह अपमानित होकर भी निर्द्वन्द्व गूँजा करेगी, शताब्दियों के निविडांधकार में चिल्लाया करेगी.....

उसकी राहं अजीब थी

मैं जानता हूँ, जो मैं कह रहा हूँ वह आपको कुछ सहज प्राप्य नहीं है ।
पर यह सत्य है ।

वह तो बिल्कुल अलग था । लोग पूछते हैं कि उसमें ऐसा क्या था जो
उसे वृम इतना महान मानते हो । मैं बताता हूँ मुनो ।

यह तो सत्य ही है कि [REDACTED] लाहा था । नीच जात था और इसीलिए
वह ऊँचे वर्णों को पहलू नहीं मानता था । गुरु रामानन्द से दीक्षा लेकर वह
अपने को पवित्र समझने लगा । परन्तु शीघ्र ही नायजोगियों, सूफियों, वेदा-
न्तियों ने उस पर प्रभाव डाला । वह उलटबाँसी बोलने लगा । परन्तु वह
इतने में ही समाप्त नहीं हो गया । वह नीच जाति का आदमी ऊँची जातों
से रियायतें माँगने में ही खतम नहीं हो गया । वह तो आगे निकल गया ।
और वही वह नयी बात कहता हूँ कि उसने जहाँ हिन्दू, मुसलमान, जांगी,
जैन, शाक्त और बौद्धों को नहीं माना, तब वही उसने मनुष्य के नये जाग-
रण की नोंव डाली । वह यह नहीं कह सका कि ईश्वर क्या था । उसके पास

जो वह सोचता था, उसे समझाने के लिए शब्द नहीं रहे क्योंकि वह जो कहना चाहता था, लोग उसे नहीं सुनते थे। लोग तो अपने धर्म के बंधनों में बँधे थे। लोग तो वही भाषा समझते थे जो उनके धर्मों में थी। और कबीर कह रहा था कि यह सृष्टि अवश्य रहस्य है, पर यह रहस्य सीमाओं में कैसे बाँधा जा सकता है। वह रहस्य तो महान है। वह सब ही ईश्वर है। तब कबीर ने कहा था कि यदि वह रहस्य महान् है तो मनुष्य को भी दुनियाँ में अच्छाई करनी चाहिये। कितनी सीधी बात थी ! दूसरों का गला काटना वह बुरा समझता था। और यह बातें उससे पहले किसी ने नहीं कही थी। वह परिवार में रहता था, खाता था तो हाथ पाँवों से काम कर। वह यथार्थ के लिये उतर आया था। और उसने समाज की नीवों को बदलना चाहा था। वह तो गरीब था, नीच था। उसके लिये उच्चवर्ण आदर्श नहीं थे, वह उच्च वर्गीय संस्कृति का मोह नहीं करता था। उसके पास सीधी साधी भाषा थी। वह मानव को सर्व श्रेष्ठ मानता था।

क्योंकि वह मूलतः मानव था। मैं देख रहा हूँ, इतनी जल्दी उसके चेलों ने उसके यथार्थवादी शब्द छोड़ दिये हैं, वे उसके पुराने योग, उलट बाँसी रहस्य, और वेदांती विचारों पर जोर देते हैं। परंतु क्या वे उसे डुबा सकेंगे ? और मुझे याद आ रहा है।

होली की भीड़ थी। लोग भूम रहे थे। कबीर तब युवक था। भीड़ बढ़ती जा रही थी। धीरे-धीरे लोग गुँसाई जी के घर की ओर जा रहे थे। वहाँ भाँग का इन्तजाम था। राजा जी के कारिंदे भीड़ के साथ थे। कबीर गुलाल उड़ रहा था।

गुँसाई जी आये। सबने जय जयकार किया।

कबीर ने देखा। सिर हिलाया। और फिर आगे बढ़कर गाया—

फूटी आंखि विवेक की

लखै न संत असंत

जाके सङ्ग दस बीस हैं

ताकी नाम महंय

अररर...कबीर...

भौड़ मस्त हो गई !

'और क्या कबीरे !' एक चिल्लाया ।

पर सिर से गीला गुलाल न गिरा । गुर्पांड के चेलों ने लहू गिराया ।

गिर गया ।

देवीलाल भागा ।

नीमा ने मुना तो जीने पर सँ छुड़क कर बेहोश हो गई । केवल लोई निर्भय चरण धरती यहीं जाकर रुक गई । उसने कबीर का खून पोंछा !

'तू कौन है !' एक चले ने पूछा ।

लोई ने उसके लहू की बिंदिया लगा कर सिर मुका लिया ।

'लेजा इसे ।' चले ने कहा 'खबरदार जो फिर श्घर आया है । जुलाहा ! कमीना । नीन !'

लोई ने मुना । कहा : और कहलो पण्डित । पर वह क्या है यह मैं जानती हूँ ।

लोई के घाप ने मुना तो भागा भागा आया । पर जब वह आया उसने देखा लहू से आचल भिरोने वाली बेटी बेहोश कबीर को ऐसे लिए बैठी थी जैसे पुरानी व्याहता को लगा वह सावित्री थी, उसकी गोद में सत्यधान था ।

यों लोई कबीर एक हो गये ।

कबीर बच गया । पर मौ न उठी ।

सम्भ्रा गई थी । नीमा खाट पर लेटी थी । लोई सिरहाने गोद में उसका सिर लिये बैठी थी । कबीर बाहर बुन रहा था ।

माँ ने पुकारा : कबीर !

‘आया माँ !’

वह भीतर आया ।

‘क्या है माँ !’

माँ के मुख पर एक गहरी निस्तब्धता थी ।

‘यहाँ आ बेटा !’

कबीर निकट आ गया । माँ उसका मुँह हाथ में लेकर देखती रही ।

शांत अपलक । वे बूढ़ी आँखें प्रभा को लिये एक बार पुलकित हो उठीं और उसने उद्वेगहीन स्वर से पुकारा : बेटा ।

‘माँ !’ लोई रो उठी ।

‘क्यों रोती है लोई ?’ माँ ने कहा । ‘आज मैं जा रही हूँ बेटा ! रोने की क्या बात है ?’

पर वह रोती रही । कबीर अवाक् देखता रहा । माँ का चेहरा कितना शांत था । वे आँखें कितनी गहरी थीं । उन दोठों पर कितनी क्षमता और क्षमा थी ।

नीमा ने कहा : बेटा !

‘हाँ माँ !’ कबीर ने फुसफुसाया ।

‘मैं चली जाऊँगी बेटा ! रोना नहीं । मेरा काम पूरा हुआ । अब मुझे दुख नहीं है । लोई आ गई है न ? वह सब सम्भाल लेगी । छोटी तो है, पर लड़की में समझ सुसराल में ही आती है बेटा । रोना न दीजो ।’

कबीर आँखें फाड़ कर देखता रहा ।

माँ ने कहा : आज तक मैंने नहीं कहा बेटा । पर आज कहती हूँ । एक दिन मैं और तेरा बाप नीरू चले जा रहे थे । रास्ते में एक अनाथ, हाल का पैदा हुआ बच्चा पड़ा था । उसे हम उठा लाये और अपना कह कर पाल लिया । बेटा वही तू है...

माँ का वाक्य पूरा नहीं हुआ । वह सदा के लिये चली गई : लोई फूट फूट कर रो उठी, पर कबीर स्तब्ध पत्थर सा बैठा रहा ।

लोई ने उसे झुकझोर कर कहा : रो अभागे ! तेरी माँ मरो है ।

कबीर ने उसी मुद्रा में कहा : मेरी माँ ! वह तो मुझे जनम देकर छोड़

गई थी लोई । मैं पाप की संतान हूँ....

वह कितना कठोर दुःख था जो उसके हृदय को गंभीर से रंदा था ।

लोई ने कहा : बेदखल ! मैं वह नहीं थी, मैं तो यह हूँ....

‘तुझे मुझसे नफरत नहीं लोई ?’ कबीर ने जैसे ही पूछा । ‘मैं तो पाप की संतान हूँ....’

लोई हँसी । उस समय लाश पर रोते रोते वह अनाथक हँस रही थी ।
उसने कहा : पाप ! कैसा पाप !! मुझे तो तू पदार्थ का भाई लगता है ।

‘लोई....!’ कह कर कबीर तब रोया था और अनाथ भीमा के पाँवी की आँसुओं से भिगो दिया था । कितनी महान थी वह स्त्री जिसने एक क्षणिक चित्त अनाथ को अपना बनाकर पाला था, उगम एककाक का जन्म था....

लोई ने आँखें उठा कर देखा था और कहा नहीं था कुछ, केवल फिर चरखा संभालने लग गई थी ।

कबीर झुँझलाकर चला आया था ।

साधुओं की भीड़ में गुरु रामानन्द अपने भव्य मुख मण्डल पर मुस्कान लिये बैठे थे ।

कबीर बढ़ने लगा ।

एक चिल्लाया : 'कौन है ?'

'जुलाहा है ।' दूसरा बोला ।

'अरे देखता नहीं । कहाँ बढ़ा आ रहा है नीच !'


'महाराज बैठे हैं ।'

कबीर ठहर गया था । उसने पुकारा था : महाराज ! यह दास शिष्य बनने आया है ।

साधू ठठा कर हँस उठे थे ।

रामानन्द ने देर तक देखा था । कबीर निर्मल दृष्टि में भक्ति उँड़ले दे रहा था । रामानन्द का हाथ उठा । सब शांत होगये । कबीर ने प्रणाम करके पाँव छूने को हाथ बढ़ाया ।

'रुक जा ।' रामानन्द ने कहा और फिर जैसे वे गंभीर चिंतन में डूब गये । कबीर हाथ बढ़ाये ही रुक गया ।

कुछ देर बाद गुरु ने कहा : तेरा नाम  ?

'प्रभु ! कबीर ।'

'कौन जात है ?'

'जुलाहा हूँ ।'

'तुझे भगवान ने शूद्र बनाया है जुलाहे । अपना काम कर । वही तेरे लिये धर्म है ।

कबीर को काठसा मार गया ।

उमने कहा : महाराज ! लोग आपके द्वार से निराश नहीं लौटते । क्या राम मेरा नहीं है ?

गुरु रामानन्द ने मुना तो उठकर चले गये । वे उत्तर नहीं दे सके । श्रीर कबीर वहीं बैठ गया । शाम हो गई । वे मंदिर से बाहर नहीं निकले । आते जाते साधुओं ने पहले तो खिल्ली उड़ाई फिर उसे धक्का देकर भगा दिया ।

भीर की पहली किरम भी नहीं फूटी । गंगा के घाट पर स्वामी रामानन्द खड़े आकाश की ओर देख रहे थे । उन्होंने धीरे से आकाश की ओर हाथ उठा कर बड़बड़ाया : राम तू किसका है ?

गंगा हरहरा उठी ! मानों पतिततारिणी ने उत्तर दे दिया । यह तो सब की थी । रामानन्द सीढ़ी से उतरने लगे ।

ढाट् उनका पाँव अंधेरे में किसी से छू गया ।

'राम राम !' रामानन्द ने कहा—'राम राम !'

और उनका पाँव पकड़ कर किसी ने दुहराया, राम राम ! राम राम !

'कौन !' रामानन्द ने चर से पूछा ।

'गुरुदेव ! मुझे मुनि का बीजाक्षर मिल गया ।' किसी ने विमोर स्वर से रामानन्द के चरणों पर सिर रख कर कहा ।

'कबीर !' रामानन्द का कष्ट काँप गया । वे रो उठे और उन्होंने उसे बड़ से लगा कर कहा : कबीर ! तू जीत गया कबीर । मुझे तूने अहं और अभिमान, अन्याय और पाप के बंधनों से मुक्त कर दिया कबीर ! मैं अन्धा हो गया था । सारा ब्रह्माण्ड राम है वत्स । यह मेरा मनुष्य के बनाये हुए हैं । उसके लिये सब बराबर हैं । वही राम तू है, वही गंगा है । राम तो सबका है ।

'गुरुदेव !' कबीर विमोर सा पुकार उठा था ।

गंगातीर की शांत बेला में प्रभात का समीरण सिकता पर झूम रहा था । कबीर वहीं खड़ा रहा और जपता रहा : राम राम...राम राम...

लोई ने आँखें उठा कर देखा था और कहा नहीं था कुछ, केवल फिर चरखा संभालने लग गई थी।

कबीर भुँभलाकर चला आया था।

साधुओं की भीड़ में गुरु रामानन्द अपने भव्य मुख मण्डल पर मुस्कान लिये बैठे थे।

कबीर बढ़ने लगा।

एक चिल्लाया : 'कौन है ?'

'जुलाहा है।' दूसरा बोला।

'अरे देखता नहीं। कहाँ बढ़ा आ रहा है नीच !'

'महाराज बैठे हैं।'

कबीर ठहर गया था। उसने पुकारा था : महाराज ? यह दास शिष्य बनने आया है।

साधू ठठा कर हँस उठे थे।

रामानन्द ने देर तक देखा था। कबीर निर्मल दृष्टि में भक्ति उँड़ले दे रहा था। रामानन्द का हाथ उठा। सब शांत होगये। कबीर ने प्रणाम करके पाँव छूने को हाथ बढ़ाया।

'रुक जा।' रामानन्द ने कहा और फिर जैसे वे गंभीर चिंतन में डूब गये। कबीर हाथ बढ़ाये ही रुक गया।

कुछ देर बाद गुरु ने कहा : तेरा नाम—

'प्रभु ! कबीर।'

'कौन जात है ?'

'जुलाहा हूँ।'

'तुझे भगवान ने शूद्र बनाया है जुलाहे। अपना काम कर। वही तेरे लिये धर्म है।

कबीर को काटसा मार गया।

उयने कहा : महाराज ! लोग आपके द्वार से निराश नहीं लौटते । क्या राम मेरा नहीं है ?

गुरु रामानन्द ने मुना तो उठकर चले गये । वे उत्तर नहीं दे सके । श्रीर कबीर वहीं बैठ गया । शाम हो गई । वे मंदिर से बाहर नहीं निकले । आते जाते साधुओं ने पहले तो खिल्ली उड़ाई फिर उसे धक्का देकर भगा दिया ।

भीर की पहली किरन भी नहीं फूटी । गंगा के घाट पर स्वामी रामानन्द खड़े आकाश की ओर देख रहे थे । उन्होंने घोंरे से आकाश की ओर हाथ उठा कर बड़बड़ाया : राम तू किसका है ?

गंगा हरहरा उठी ! मानों पतिततारिणी ने उत्तर दे दिया । वह तो सब की थी । रामानन्द सीढ़ी से उतरने लगे ।

हठात् उनका पाँव अंधेरे में किसी से छू गया ।

‘राम राम !’ रामानन्द ने कहा—‘राम राम !’

श्रीर उनका पाँव पकड़ कर किछी ने दुहराया, राम राम ! राम राम !

‘कौन !’ रामानन्द ने अंधेरे से पूछा ।

‘गुरुदेव ! मुझे मुक्ति का बीजाक्षर मिल गया ।’ किसी ने विमोर स्वर से रामानन्द के चरणों पर सिर रख कर कहा ।

‘कबीर !’ रामानन्द का कण्ठ काँप गया । वे रो उठे और उन्होंने उसे बड़ से लगा कर कहा : कबीर ! तू जीत गया कबीर । मुझे तूने अहं और अभिमान, अन्याय और पाप के बंधनों से मुक्त कर दिया कबीर ! मैं अन्धा हो गया था । सारा ब्रह्माण्ड राम है वत्स । यह भेद मनुष्य के बनाये हुए हैं । उसके लिये सब बराबर हैं । वही राम तू है, वही गंगा है । राम तो सबका है ।

‘गुरुदेव !’ कबीर विमोर सा पुकार उठा था ।

गंगातीर की शांत बेला में प्रभात का समीरण सिकता पर भूम रहा था । कबीर वहीं खड़ा रहा और अपता रहा : राम राम...राम राम...

आज उसे लग रहा था वह मुक्त हो गया था.....

रात भर के जागे नैन लाल हो गये थे। लोई बैठी थी। कबीर लौटा तो पागल सा था।

‘लोई!’ वह चिल्ला उठा।

‘क्या हुआ?’ लोई चौंक पड़ी।

‘मुझे गुरु रामानन्द ने शिष्य बनाया लोई! मुझे राम मिल गया।

मैं मक्ति का अधिकारी हो गया।’

लोई मुस्करा दी। धीरे से कहा : मुझे तू वैसा ही लग रहा है कंत जैसा पहले था। क्या ब्राह्मण के मना कर देने से राम तेरा नहीं था? क्या उसके छूकर कह देने से ही तू मुक्त हो गया!

कबीर ने सुना तो देखता ही रह गया। अवाक्, निस्पंद...

लोई ने फिर कहा : यह बच रहा है, इसे बुनले, सुबह को चून भी नहीं है.....क्या आज राम को भूखा ही रखेगा...

कबीर ने सिर झुका लिया।

कमाल के जन्म से पहले की बात है। कबीर के घर साधू आने लगे थे। आकाश में बादल घिर रहे थे। किसी ने द्वार थपथपाया।

‘कौन है?’ कबीर ने पूछा।

लोई ने द्वार खोला। एक बूढ़ा साधु था।

‘पधारो महाराज!’ कबीर ने कहा। साधु भीतर आया।

परन्तु लोई के चेहरे पर उदासी आगई। आज वे दोनों भूखे सो रहे थे किंतु अतिथि भूखा कैसे रहेगा? लोई चुपचाप चली आई। जब लौटी तो

आटा था। साधू की सेवा हुई। साधू चला भी गया। पर लोई जहाँ बैठी थी वहीं बैठी रही।

कबीर ने कहा : बचा है कुछ लोई !

'हों !'

'तू खाले !'

'नहीं, तुम खालो !'

पर फिर दोनों खाने बैठे। लोई दठात् कबीर के पत्र पर सिर रख कर फूट फूट कर रोने लगी।

'क्या हुआ ?' कबीर ने कहा।

लोई कह नहीं सकी। अन्त में कबीर ने सुन ही लिया।

बोला : फिर ?

लोई ने कहा : वचन दिया था तो क्या हुआ ! पाप निभाना मुझसे नहीं होगा।

कबीर ने कहा : पाप ! उसे पाप समझना ही पाप है लोई ! पर मैंनाज नहीं था। अपने पेट के लिये नहीं था, हमने भीख नहीं माँगी। पर दूसरा आया। उसका तो पेट भरना अपना धर्म था। हम भी क्या धनी श्रीमंती की तरह आँखें फेर लेते ! तू नाज माँगने गई। जिसने नाज दिया उसे तेरा रूप अच्छा लगा। उसने अपने ही तुझे माँगा। तू हाँ कर आई। तो फिर वचन निभा लोई !

'नहीं, नहीं', लोई रो पड़ी।

कबीर ने हँस कर कहा : पगली ! तू समझती है मैं तुझसे तब धिन करूँगा ! क्या चाहता है वह सेठ। तेरी जवानी से खेलना चाहता है न ! खेलने दे उसे क्योंकि तुने वचन दिया है। तू पाप के लिए उसके पाप नहीं जाती लोई ! पाप तो उसमें है। तू पवित्र है। तू अपने लिये नहीं, दूसरे के लिये भीख माँगने गई थी। आज तो कोई जवानी ही चाहता है। फल को कोई फिर भी माँग बैठा, तो क्या तू दूट जायेगी !

भयानक यों ही रही थी। कबीर ने लोई को डाट ओढ़ा कर फेंके पर बिठा लिया था।

जब वे सेठ के घर पहुँचे तो कबीर द्वार पर बठ गया । लोई ने द्वार खड़ खड़ाया । सेठ अंधा और पागल था । वासना चिल्ला उठी : लोई ।

लोई दृढ़ खड़ी रही । कहा : मोल चुकाने आई हूँ । वचन दे गई थी न सेठ ने देखा । लोई निर्मय खड़ी थी । वह समझा नहीं । घबराया भी उसने कहा : तू भींगी नहीं लोई । बाहर तो मूसलधार पानी गिर रहा है 'मुझे मेरा कंठ कंधे पर बिठाकर लाया है ।'

सेठ ने सुना तो चार हाथ पीछे हट गया । वह घुटनों में मुँह छिपाकर बैठ गया और रोने लगा । लोई पास चली गई । कबीर ने सुना । सेठ : कहा : लोई तू मेरी माँ है, तू मेरी माँ है ।

कबीर द्वार पर आ गया और उसने कहा :

पहले यह मन काग था
करता जीवन घात
अब तो मन हँसा भया
मौती चुँगि चुँगि खात ।
कविरा मन परबत होता
अब मैं पाया कानि
टाँकी लागी सव्व की
निकसी कंज खानि ।

दूसरे दिन काशी में चर्चा चल पड़ी । नगर का प्रसिद्ध सेठ आया और कबीर के सामने उसने साष्टांग दण्डवत की । और पाँव पकड़ कहा : गुरु मेरा प्रायश्चित्त बताओ ।

कबीर ने मुस्कराकर कहा : प्रायश्चित्त एक ही है रे धनी । करेगा !
'आज्ञा दो गुरु !'

‘माया तेरी यधु है । उसका दास नहीं बन । खाली राम राम करने से लाभ नहीं होगा ।

जो जल वाड़े नांव में

घर में वाड़े राम ।

दोऊ हाथ उलीचिये

यही सज्जन को वाम ।

‘बा ! दीनों की सेवा कर ! नारी का सम्मान कर !’

सेड पाँव छूकर चला गया ।

लौरे ने देखा तो कबीर के चरणों पर चिर घर कर प्रणाम किया । कबीर

ने कहा—

सेज बिछावै मुन्दरी

अन्तर परदा होय ।

तन सोंपे मन दे नही

सदा सुहागिन होय !

कबीर अचेष्टायस्था ^{था} कर रहा था । जीवन भर मेहनत मजदूरी करने से उसके शरीर में श्रम भी बल था । माथे पर बाल कुछ सफेद हो गये थे । लोरे के कानों पर लटें सफेद हो गई थीं । धीरे कमाल सब वरण था ।

दरबार भरा हुआ था । सारी काशी हकटूटी होगई थी । मुल्तान सिकन्दर लोदी सोने के सिंहासन पर बैठा था ।

सामने कबीर लोदे की जंबीरों में बैठा मुस्करा रहा था । असंख्य प्रजा इकट्ठा रही थी ।

मीरसुंरी के कह चुकने पर निस्तब्धता छा गई । अपनी मुसीली नाक पर तगवु की तरह अपनी गिद्ध बैठी आँखें उठा कर मुल्तान ने स्वर से

पूछा : यह सच है जुलाहे कि तूने रियाया को भड़काया ?

लोदी हिंदी बोल रहा था ।


‘मैंने नहीं भड़काया सुल्तान ।’ कबीर ने उत्तर दिया । ‘यह शलत है !’

काज़ी उठा । उसने कहा : हुज़ूर मुझे इजाजत हो तो मैं अर्ज करूँ ?

‘कहो !’ सिकन्दर ने कड़कती आवाज़ में कहा ।

लोई ने देखा । कमाल ने सुना । काज़ी ने कहा : यह जुलाहा लोगों से कहता है कि नमाज़ी भूँटे हैं । मुसलमान हत्या करते हैं । गाय काटते हैं । यह मुसलमानों के खिलाफ नफरत पैदा करता है ।

सिकन्दर ने गरज कर कहा : सुनता है ?

तब कबीर ने हाथ उठाया । उसके हाथ में बंधी लोहे की शृंखला भन-भना उठी । उसने कहा : मैं किसी से नफरत नहीं करता । हिंदुओं में वर्णाश्रम व्यवस्था ने इन्सान को इन्सान से बाँट दिया है । उनके अवतारों की कथाओं ने जनता को रूढ़ियों में फाँस लिया है । मूर्ति पूजा के नाम पर मंदिरों में लूट मची हुई है । जैनी और बौद्ध ईश्वर को नहीं मानते, पर उनके आचरण किसी भी तरह हिंदुओं से कम रूढ़िवादी नहीं हैं । जोगी संसार में रह कर भी दूसरों की कमाई पर रहते हैं । एक दिन मैं भी उनकी रहस्य की बातों से, हठयोग से प्रभावित हुआ था । पर वह सहज नहीं था, उसका अन्त पाषंड ही है । मैं इन सबको नहीं मानता । लोग  पद्मद्वीप का धर्म सनातन है, वेद भगवान का बनाया है, मैं इसे भी नहीं मानता । वे सब कहते हैं मैं नीच हूँ और मुसलमानों का दोस्त हूँ । और तुम मुझे मुसलमानों का दुश्मन समझते हो । तो सुनो । मैं तुम्हारी तेज़ से डरता नहीं । क्या तुम्हारा मजहब यही है कि तुम बेकुसूर जानवरों को काट कर खाओ और रोजे नमाज़ का ढोंग करो ।

सिकन्दर चिल्लाया : जुलाहे !!

कबीर ने कहा : तू मुझे रोक लेगा सुल्तान ? विधाता भी मुझे नहीं रोक सका । मेरा सहारा बचाने वाला है । अगर ब्राह्मणों, जैनों, जोगियों, शाक्तों, बौद्धों और कापालिकों का बस चलता तो वे कभी का मुझे मार देते । पर मेरे साथ यह थे.....

कबीर ने गरीबों को मोड़ की तरफ हाथ उठाया और कहा : इन्होंने मुझे बनाया । पराई, मठाधीशों के गुने मुझे मार नहीं सके । और तुम मुश्मद का नाम लेते हो, हुक का खतम करने के नाम पर मंदिरों का सोना लूटने के लिये मजदूर की आड़ लेते हो ! तुम्हारे मुल्ला तुम्हें खींच कर हिमायत के लिये लाये हैं । हम गरीब थे, हैं । बैसे हिंदू गजा थे, बैसे तुम हो । और तुम लोगों को बहका कर मुसलमान बनाते हो । उरुते क्या फरक पड़ता है । तुम सब इन्सान को इन्सान नहीं रहने देना चाहते * *

सिकंदर ने मुना । भीड़ चिल्लाई : कबीर की * *

जय ! * * *

कबीर की * * *

जय !

उस अपराधित साहस को देखकर सिकंदर लोदी मन ही मन थगा गया । उसने काज़ी की ओर देखा ।

काज़ी ने कहा : हुज़ूर ! यह धागी है ।

‘जानता है इसका नतीजा !’ एक मुल्ला चिल्लाया ।

कबीर ने मुड़कर कहा : कौनसा नतीजा है जिससे डरकर मैं झूठ बोलूँ ? लोई ने चिल्ला कर कहा : बंत अमर है । तू गरीबों की आन है ।

सिकंदर मुड़ा । पूछा : कौन है यह आंतर ?

‘हुज़ूर,’ काज़ी ने कहा : ‘यह’ की बीबी है ।’

सिकंदर के माँसे :  गये ।

लोई कह रही थी : मार डालो । डराते किमे हो ! अरे इस देश की घूल में आने कितने हुकुमत करने वाले सिंग पटक कर मर गये । पर गरीब अमर हैं । मेहनत और ईमान की कमाई खाने वाला कमी नहीं मर सकता ।

कबीर के होठों पर मुस्कराहट आ गई । यह चिल्लाया : माइयो ! कायर की मौत मरने से तो बहादुर की मौत मग्ना अच्छा है । हमारे देश में वही अपना है जो आदमी की आजादी के लिये खड़ा है । यह मुसलमान ही नहीं, इंसान और इंसान के बीच दीवार खड़े करने वाले पण्डित, जोगी, बत्ती, बैन, बौद्ध, शाक्त, सब विदेशी हैं । वे धर्म के नाम पर ऊँच नीच बना कर

लूटते हैं। मैं वह नहीं हूँ जो इस देश के ऊँच नीच वाले कायदों को मान कर सिर झुका दूँ और उसे अपना हिंदू धर्म कह कर इस्लाम को विदेशी कह दूँ। मेरे लिए तो यह सब ग़लत है। यह सब धोखा है। यह सब जड़ता और घृणा पर चलने वाले सिद्धांत हैं, जो गरीबों को गरीब और लुटेरों को लुटेरा और हरामखोर रखते हैं।

कोलाहल होने लगा। सुल्तान क्रोध से व्याकुल हो उठा। उसने चिल्ला कर कहा : जुलाहे ! तेरी मौत तेरे सिर पर मंडरा रही है।

कबीर ने हँस कर कहा : सुल्तान ! पलट कर देख ! कोई इस धरती को ले गया है ! ! इस धन और हुक्मत के हाथों तू बिक चुका है। अब तू नहीं बोलता, तेरा झूठा अहंकार बोलता है। मैं मरूँगा जरूर, कल नहीं अभी, पर तू तो अमर ही रहेगा न ? नादान—

माली आवत देखि कर

कलियन करी पुकार

फूले फूले चुन लिये

काल्हि हमारी बार ।

तू मुझे डराता है। तेरे यह सिपाही मुझे क्या मार सकते हैं ! मेरा मैं तो कभी का छूट गया, जब डरने वाला ही नहीं रहा, तो फिर मुझे किसका डर है ?

भीड़ चिल्लाई : जय कबीर !

उस भीड़ में मुसलमान भी थे, लेकिन ग़रीब

काज़ी ने कहा 'हुजूर, मुसलमान भी इसके साथ हैं !'

सिकंदर लोदी खड़ा हो गया। और सामने कबीर बंधा खड़ा था। सोने के सिंहासन पर खड़े हुए, खड़खड़ाते शस्त्रों से सुरक्षित लोदी के चितित माथे पर बल पड़ गये थे। कबीर उनके बीच में लोहे की जंजीरों में बंधा भी मुस्करा रहा था। कमाल ने देखा लोई निडर थी, जैसे वह आज कबीर पर न्यौछावर थी।

लोई चिल्लाई : सुल्तान ! तेरा पाप तुझे डरा रहा है। देख ! तेरे सामने वह किस शान से खड़ा है। सत्य के तेज ने उसे आग बना दिया है और तू

सोने के सिंहासन पर चढ़कर भी मिट्टी ही बना रहा ।।

सिकन्दर सह नहीं सका । उसने इंगित किया । और देखते ही देखते मस्त हाथी छोड़ दिया गया । भीड़ काँप गई । कबीर निर्द्वन्द्व खड़ा रहा ।


हाथी चिंघाड़ कर बढ़ने लगा ।

कमाल आगे बढ़ा । उसी समय सिकन्दर लोदी घरी उठा और सिंहासन पर लड़खड़ा कर बैठ गया । भीड़ विस्त्रुब्ध हो उठी थी । लोई भपटी और हाथी ने सपट में लपेट कर कँक दिया । वह कबीर के चरणों पर अचेत सी गिर गई । भीड़ नहीं रुकी । सैनिकों से युद्ध होने लगा । उस भीड़ में गरीब थे, वे हिंदू भी थे, मसलमान भी, जुगी भी, जुलाहे भी ।

काजी ने कहा : हुजूर मुसलमान मसलमान से लड़ रहा है ।

पर भीड़ बढ़ती ही गई । मुल्तान और सेना पीछे रह गये । कबीर और कबीर के चरणों पर लोई को गरीबों की सौ सौ गज मोटी दीवारों ने अमेघ कवच की भांति घेर लिया ।

सिकन्दर क्रुद्ध सा लौट गया । आज वह हार गया था । बगावत को कुचलने के लिये मुँह खोलने के पहले, उसे खेमे में खबर मिली कि चंदवार ठाकुरों ने भयानक हमला किया है, और किसी भी क्षण लोदी नेस्तनाबूद हो सकते हैं । उसने उसी वक्त कौर्जों को लौटने का हुक्म दे दिया ।

भीड़ खड़ी भी  कह रहा है । सुनते ही मैं कमाल पुकार र कर कह रहा । लोग कहते हैं कबीर को चमत्कारों ने बचा लिया । पर सच्चाई नहीं कहते कि उसे काशी की जनता ने जान दहेली पर रखकर बचा लिया ।



मैंने व्याकुल स्वर से पुकारा : माँ ! श्रमों ! तु चली गई ! पर दादा शांत थे । उनके मुख पर दिव्याभा थी । उस असेख्य भीड़ में ये सहसा गा उठे—

पतिवरता पति को भजे

और न आन सहाय

सिंह वचाः जो लँघना
 ती भी घास न खाय ।
 सती विचारी सत किया
 कांटों सेज बिछाय
 लै सूती पिय आपना
 चहुँ दिसि अग्नि लगाय ।
 चढ़ी अखाड़े सुंदरी
 माँड़ा पिउ सों खेल
 दीपक जोया ज्ञान का
 काम जरै ज्यों तेल ।

भीड़ रोने लगी । मैं तो आँखें ढंक कर बैठ गया । तब पिता ने विभोर कण्ठ से गाया जैसे वे अपने आपको भूल गये थे—

हूँ बारी मुख फेरि पियारे
 करवट दे मोहें काहे को मारे
 करवट भला न करवट तेरी
 लाग गरे सुन विनती मेरी
 हम तुम बीच भया नहि कोई
 तुमहि सो कँत नारि हम सोई
 कहत कबीर सुनो न 
 अब तुम्हरी परतीत  हाई ।

भीड़ का विह्वल हाहाकार, और फिर विद्वोभ का फूटता हुआ ज्वार, सब कभी जयजयकार बन जाते, कभी धुआधार कोलाहल ।

मैंने देखा । उस क्षण वह ज्ञानी कबीर, सुल्तान को चुनौती देने वाला कबीर, अत्यन्त तन्मय दिखाई दे रहा था ।

मैंने कहा दादा : अम्माँ चली गई ।

*बच्चा ।

× विश्वास ।

'नहीं बेटा ! यह तो कबीर बन गई । अब कबीर चला गया ।' पिता ने कहा ।

लोग उसे उठाने आये । वे जुलूस निकालना चाहते थे । पर पिता ने कहा : नहीं । लोई को मैं लाया था, मैं ही ले जाऊँगा क्योंकि यह आज मेरे भीतर समा गई है—

सूरा के तो सिर नहीं
दाता के घन नाहि
पतिव्रता के तन नहीं
सुरति वसै पित माहि....

और पिता ने लोई को हाथों पर उठा लिया । वे आगे बढ़े और पुकार उठे—गाओ ! आज लोई के लिये गाओगे नहीं ?

और हजारों की मीढ़ शमशान की ओर गाती हुई बढ़ चली—

ऐरी घूँघट के पट गोल
तोहे पिया मिलेंगे....

उस समय मुझे लगा था कि कबीर बैठा मनुष्य तब तक इस देश में हुआ ही नहीं था, वह कैसा नया मनुष्य था, अरराबित, अनिय, मदान निष्कलंक.....

और मीढ़ गाती  गाती जा रही थी....

सिंह बचाऊ जो लँघना
 तौ भी घास न खाय ।
 सती विचारी सत किया
 कांटों सेज विछाय
 लै सूती पिय आपना
 चहुँ दिसि अग्नि लगाय ।
 चढ़ी अखाड़े सुंदरी
 माँड़ा पिउ सों खेल
 दीपक जोया ज्ञान का
 काम जरै ज्यों तेल ।

भीड़ रौने लगी । मैं तो आँखें दंक कर बैठ गया । तब पिता ने विभोर
 कण्ठ से गाया जैसे वे अपने आपको भूल गये थे—

हूँ वारी मुख फेरि पियारे
 करवट दे मोहें काहे को मारे
 करवट भला न करवट तेरी
 लाग गरे सुन विनती मेरी
 हम तुम बीच भया नहि कोई
 तुमहि सो कँत नारि हम सोई
 कहत कबीर सुनो न
 अब तुम्हरी परतीत * न हाई ।

भीड़ का विह्वल हाहाकार, और फिर विजोभ का फूटता हुआ
 कभी जयजयकार बन जाते, कभी धुआधार कोलाहल ।

मैंने देखा । उस क्षण वह शानी कबीर, सुल्तान को चुनौती देने वाला
 कबीर, अत्यन्त तन्मय दिखाई दे रहा था ।

मैंने कहा दादा : अम्माँ चली गई ।

*बच्चा ।

X विश्वास ।

‘नहीं वेटा ! वह तो कबीर बन गई । अब कबीर चला गया ।’ पिता
कहा ।

लोग उसे उठाने आये । वे झुलूस निकालना चाहते थे । पर पिता ने
ह्रा : नहीं । लोई को मैं लाया था, मैं ही ले जाऊँगा क्योंकि वह आज
रे भीतर समा गई है—

सूरा के तो सिर नहीं
दाता के घन नाहि
पतिवरता के तन नहीं
सुरति वसै पिउ माहि—

और पिता ने लोई को हाथों पर उठा लिया । वे आगे बढ़े और पुकार
टे—गाओ ! आज लोई के लिये गाओगे नहीं ?

और हजारों की भीड़ शमशान की ओर गाती हुई बढ़ चली—

ऐसी धूँधट के पट खोल
तोहे पिया मिलैगें—

उस समय मुझे लगा था कि कबीर जैसा मनुष्य तब तक इस देश में
आ ही नहीं था, वह कैसा नया मनुष्य था, अपराजित, अनिन्द्य, महान
नष्कलं०.....

और भीड़ गाती () गाती जा रही थी—